आलोक पुस्तकमाला

७

घनानन्द-रत्नावली

महाकवि घनानन्द की उत्तमोत्तम कविताओं का संग्रह

घनानन्द परिचय

कविवर घनानन्द की गणना व्रजभाषा के परम उत्कृष्ट कवियों में है। इनका जन्म सम्वत् १७१५ में हुआ था। यह कायस्थ कुल भूषण थे। इनके पूर्वज नौकरी करते थे। उन दिनों मुग़ल सम्राट के राज्य में फ़ारसी का दौर दौरा था इसलिये इनकी प्रारम्भिक शिक्षा फ़ारसी में हुई थी। कालान्तर में उन्होंने फ़ारसी में इतनी निपुणता प्राप्त की कि धीरे धीरे यह कविता करने लगे और उस समय के फ़ारसी के विद्वानों ने इनकी कविता की प्रशंसा की। कोई भी भाषा किसी जाति विशेष की पैतृक सम्पत्ति नहीं होती जो भी उसे परिश्रम से प्राप्त करता है वह उसके लिये फलवती होती है।

इस प्रकार फ़ारसी साहित्य में निपुणता प्राप्त करके घनानन्द नौकरी की खोज में बाहर निकले। भाग्य ने सहारा दिया और सम्राट की सेवा में इनकी नियुक्ति एक छोटे से पद पर हो गई परन्तु इन्होंने अपने कर्त्तव्य का ऐसे सुचारु रूप से सम्पादन किया कि अल्प काल में ही यह उच्च कर्मचारियों के कृपापात्र बन गये। इनकी कार्यपटुता से प्रसन्न हो कर उन्होंने इनकी पदवृद्धि करा दी। धीरे धीरे यह मुगल सम्राट मुहम्मद शाह के प्राइवेट सेक्रेटरी (खासकलम) हो गये। इससे सिद्ध होता है कि स्वयं सम्राट घनानन्द को बहुत मानते थे और इनका विश्वास भी बहुत करते थे। यदि ऐसा न होता तो एक विधर्मी को वह अपना प्राइवेट-सेक्रेटरी बना कर ऐसे उत्तरदायित्वपूर्ण पद पर क्यों नियुक्त करते ?

बाल्यावस्था ही से घनानन्द भगवान श्रीकृष्ण की रासलीलाओं को बड़े चाव से देखा करते थे। इसका कारण यह था कि वह भगवान

श्रीकृष्ण के अनन्य भक्त थे। उस समय रास मंडलियाँ प्रायः सभी जगहों में जाया करती थीं और भगवान कृष्ण की लीलाओं के अभिनय के द्वारा भक्त जनों के हृदयों को लोकोत्तर आनन्द प्रदान किया करती थीं। जब यह मंडलियाँ दिल्ली में आतीं तो घनानन्दजी इन मंडलियों को बड़े चाव से आश्रय देते और अपना धन दे कर महीनों तक इनकी ललित लीलाओं का अभिनय कराया करते थे और कभी कभी तो वह स्वयं कोई न कोई पात्र बन कर लीला में सम्मिलित होते थे। इसका परिणाम यह हुआ कि थोड़े ही दिनों में रासधारियों के सम्पर्क से इनके हृदय में हिन्दी भाषा के प्रति अनुराग उत्पन्न हो गया और कालान्तर में यह पदों का निर्माण करने लगे।

रासलीला के सम्पर्क से ही घनानंद के हृदय में कृष्ण भक्ति की ओर अपार श्रद्धा होती गई और यह श्रद्धा यहाँ तक बढ़ गई कि धीरे-धीरे इन्हें संसार से विराग होने लगा। अन्त में इन्होंने प्राइवेट सेक्रेटरी के पद को परित्याग करके वृन्दावन में निवास किया जहां भगवान श्रीकृष्ण का स्थायी निवास माना जाता है।

घनानंद को वैराग्य ने सहसा आ घेरा या इनके जीवन में कोई ऐसी विशेष घटना हुई जिसके द्वारा इनकी विचार धारा सहसा एक दूसरे मार्ग में प्रवर्तित हो गई, यह बात विचारणीय है। जिस समय यह सम्राट मोहम्मद शाह के मीर मुन्शी थे उस समय एक गैर-मुसलिम को ऐसे आदरास्पद पद पर नियुक्त देख कर बहुत से कर्मचारी इनसे ईर्षा करते थे। यद्यपि इस ईर्षा का कोई महत्वपूर्ण कारण नहीं था।

सम्भवतः धीरे-धीरे इन ईर्षालु कर्मचारियों ने घनानन्द के विरुद्ध एक प्रबल षडयन्त्र खड़ा कर दिया हो और इन्हें अन्त में विवश हो कर अपने पद का परित्याग करना पड़ा हो। कहा जाता है कि दिल्ली में रहते समय 'सुजान' नाम की एक वेश्या से घनानन्द का प्रेम हो गया था। यह स्वयं सङ्गीत विशारदा थी और इसी के साथ

घनानन्द को भी सङ्गीत का अभ्यास हो गया था और धीरे-धीरे वह अच्छा गाने भी लगे थे।

एक दिन अपने षडयन्त्र की परीक्षा करने के लिये इन कुचक्री कर्मचारियों ने सम्राट के कान भरे और कहा कि महाराज आप के मीर मुन्शी बड़ा अच्छा गाते हैं। एक दिन इनका भी गाना सुना जाय। मुहम्मद शाह रंगीले सङ्गीत के प्रिय तो थे ही तुरन्त कहने लगे कि अच्छा सुना जाय।

फलतः सम्राट ने घनानन्द से गाना सुनाने के लिये अनुरोध किया परन्तु यह कुछ लज्जित से हुए और सम्राट को गाना सुनाने के लिये तैयार न हुए। अपने अनुरोध का उल्लंघन सम्राट को भी बुरा लगा परन्तु फिर भी उनकी प्रतिष्ठा की रक्षा के लिये वह बार-बार कहते ही रहे। इस पर एक दरबारी ने कहा कि महाराज यदि इनके सम्राट इन से कहें तो यह नाहीं न करेंगे। सम्राट को यह बात बहुत खटकी और उन्होंने पूछा कि इनका सम्राट कोई और भी है? दरबारी ने उत्तर दिया कि हाँ महाराज, वह है उनकी प्रान-प्रिया सुजान नाम की वेश्या। उसका कहना यह कभी नहीं टाल सकते। आप इसकी परीक्षा करके देख लीजिये। उसकी आज्ञा को यह आपकी आज्ञा से भी अधिक महत्वपूर्ण समझते हैं।

अब क्या था? सम्राट ने उस वारांगना को भरे दरबार में तुरन्त आने की आज्ञा दी और राजाज्ञा का पालन करने के लिये वह तुरन्त वहाँ लाई गई। उसके आते ही सम्राट ने घनानन्द से फिर गाने का अनुरोध किया। इस बार न जाने क्यों वह गाने के लिये तैयार हो गये परन्तु जब गाने बैठे तो इन्होंने सम्राट की ओर पीठ कर ली और वारांगना की ओर मुंह कर लिया। कहते हैं कि उस समय घनानन्द ने इतनी सुन्दरता से गाया कि सम्राट का रोष शान्त हो गया; पर जब इन षडयन्त्रियों ने अपना रङ्ग बिगड़ते देखा तो किसी ने चुपचाप सम्राट का ध्यान आज्ञा उल्लंघन और दरबार के

शिष्टाचार की अवहेलना की ओर आकर्षित किया। फलतः सम्राट का आनन्द क्रोध में परिणित हो गया और उन्होंने इन्हें दिल्ली नगर से तत्काल चले जाने की आज्ञा दी।

इस प्रकार सम्राट का रोषभाजन बन कर जब घनानन्द वारांगना के घर पर गये और उससे सारा वृत्तान्त सुनाकर अपने साथ चलने को कहा तो वह तैयार न हुई। वारांगना ही ठहरी। इसके प्रेम में स्वकीया की सी स्वच्छ स्थिरता की कल्पना करना व्यर्थ है। अब तो घनानन्द को अपनी भूल का पता लग गया। जिसको उन्होंने अपनी हृदयेश्वरी बना रक्खा था उसकी इतनी कृतघ्नता। जिसके गौरव की रक्षा के लिये उन्होंने सम्राट की ओर पीठ करके गाया था उसकी यह दशा कि वह इनकी अन्तिम प्रार्थना को भी स्वीकार न करे, फलतः इसी घटना से घनानन्द के हृदय में वैराग्य का अविर्भाव हुआ और वह अन्त में वृन्दावन चले आये। यहाँ पर आकर उन्होंने निम्बार्क सम्प्रदाय के साधु से दीक्षा ग्रहण की और यहीं रहने लगे।

सम्वत् १७९६ में नादिरशाह ने दिल्ली की लूट की। उस समय इसके सैनिक लूट मार करते-करते मथुरा तक आये। उनसे किसी ने कह दिया कि यहाँ क्या रक्खा है हम लोगों को बेकार ही तङ्ग करते हो। यहाँ से थोड़ी दूर पर वृन्दावन में सम्राट का प्राइवेट सेक्रेटरी रहता है। यदि वह बन्दी हो तो असंख्य धन मिल सकता है। लालची सैनिकों को यह बात पसन्द आ गई और वह मथुरा को छोड़ कर वृन्दावन चल दिये।

वृन्दावन में आ कर उन्होंने सम्राट के प्राइवेट सेक्रेटरी को ढूंढ़ना आरम्भ किया और उनको ढूंढ़ते ढूंढ़ते वहाँ जा पहुँचे जहाँ घनानन्द ध्यान लगाये हुए बैठे थे और 'ज़र-ज़र' चिल्लाने लगे। ध्यानावस्थित होने के कारण पहले तो उन्होंने कुछ सुना ही नहीं परन्तु जब सैनिकों ने हल्ला मचाया तब उनका ध्यान भङ्ग हो गया।

आँख खोलते ही घनानन्द ने अपने को एक विकट परिस्थिति में

पाया। उन्होंने देखा नृशंस सैनिक नङ्गी तलवारें लिये हुए चारों ओर से उन्हें घेरे खड़े हैं और 'ज़र-ज़र' चिल्ला रहे हैं। घनानन्द 'ज़र' का अभिप्राय भली भाँति समझते थे पर उस समय परम वैष्णव होने के कारण व्रज रेणु को ही धन मानते थे इसलिये उन्होंने तीन मुट्ठी जमुना पुलिन की पवित्र रज ले कर उनकी ओर फेंक दी। अर्थ पिशाच सैनिकों ने इसे अपना अपमान समझा और उनमें से एक ने अपना खड्ग के प्रहार से उस हाथ को काट लिया जिससे उन्होंने बृज रज फेंक कर उस सैनिक का अपमान करने की धृष्टता की थी और जब यह भगवान की विनय करने लगे तब तो वह और चिढ़ गये और क्रोध में आ कर उन्होंने इनका सर काट लिया और इस प्रकार इनकी जीवन लीला समाप्त हो गई।

घनानन्द की रचनायें

घनानन्द ने मुक्तक लिखे हैं और यह मुक्तक साहित्यिक सौंदर्य की दृष्टि से इतने रसाप्लावित हैं कि स्वयं बाबू हरिश्चन्द्र ने अपने सुन्दरी तिलक में इनका संकलन किया था। और फिर 'सुजान शतक' के नाम से एक इन्हीं की रचनाओं का संग्रह उन्होंने अलग प्रकाशित कराया। इसके अनन्तर रत्नाकरजी ने 'सुजान सागर' का सम्पादन किया और इसका प्रकाशन काशी के हरिप्रकाश प्रेस से हुआ। इसके अनन्तर घनानन्द जी के लगभग पाँच सौ छन्दों का संग्रह स्वर्गवासी अमीर सिंह ने किया और इसका प्रकाशन इंडियन प्रेस ने किया। इस संग्रह में सभी प्रकार के छंद हैं। दोहे, सोरठे आदि की तो कमी है पर सवैये और घनाक्षरियाँ अधिक हैं।

इसके अतिरिक्त इन्होंने विरह लीला के सम्बन्ध में भी बहुत से पद लिखे हैं। इनका प्रकाशन नागरी प्रचारिणी ग्रन्थ माला में हुआ था। इन पदों में फ़ारसी काव्य की प्रणाली का आभास मिलता है। इसका मूल विषय विरह निवेदन है जैसा कि इसके नाम से प्रतीत

होता है पर इसमें सौंदर्य्य की व्यञ्जना करते हुए आध्यात्मिक भाव के भी बहुत से पद हैं। गोपियों के विरह वर्णन में एक से एक सुन्दर पद कहे गये हैं।

इसके अतिरिक्त रसकेलिवल्ली' या 'घनानन्द कवित्त' के नाम से उनकी रचना और भी बतलाई जाती है। इसमें 'राधाकृष्ण' का शृंगार-पूर्ण वर्णन है। मिश्र बन्धुओं ने घनानन्दजी के ४२५ छन्दों का एक और संग्रह देखा है और कविवर श्रीहरिप्रसादजी 'वियोगी हरि' ने घनानन्दजी की वानी नाम के एक और संग्रह का उल्लेख किया है। यह अष्टयाम के ढङ्ग का है। इनके अतिरिक्त कुछ लोग 'इश्क-लता' 'प्रीत-प्रवास' और कोकसार को भी इन्हीं की रचना बतलाते हैं पर इस विषय में खोज की आवश्यकता है;

आलोचना—घनानन्द की भाषा विशुद्ध ब्रजभाषा है। कारण यह है कि उन्होंने इसका अभ्यास ब्रजवासी रासधारियों के संसर्ग से किया था जिनकी मातृभाषा ब्रज भाषा ही होती है। इनके काव्यों में में विरह और क्षोभ का अधिक आभास मिलता है। कारण स्पष्ट ही है। इनका सुजान से वियोग हुआ था। उसके विरह की गहरी मुद्रा इनके प्रेमी हृदय पर अंकित थी। फलतः उससे जो उद्‌गार निकले वह भी विरहपूर्ण ही रहे। उनके काव्य का रसास्वादन करने लिये विशेष प्रकार का व्यक्ति होना चाहिये।

नेही महा ब्रज भाषा प्रवीन, औ सुन्दरतानि के भेद को जानैं।
जोग वियोग की रीति में कोविद, भावना भेद स्वरूप को ठानैं॥
चाह के रंग में भींज्यौ हियौ, बिछुरे मिले पीतम सांति न मानै।
भाषा प्रवीन सुछंद सदा रहै, सो घनजी के कवित्त बखानैं॥१॥
प्रेम सदा अति ऊँचौ है, सु कहै यहि भाँति की बात छकी।
सुनि कैं सब के मन लालच दौरैं, पै बौरे लखैं सब बुद्धि चकी॥
जग की कविताई के धोखे रहैं ह्याँ प्रवीनन की मति जाति जकी।
समुझै कविता 'घन' आनद की, हिय आँखिन नेह की पीर तकी॥२॥

ऊपर के छंदों से पता लगता है कि घनानन्द की कविता में भाषा की सफाई और सच्चे प्रेम का वास्तविक स्वरूप दोनों पाए जाते हैं। इसलिए संयोग या वियोग शृंगार दोनों का वर्णन करते समय कवि ने प्रेमियों के मन की दशा का विशेष वर्णन किया है, उनके अंगों के संचालन तथा सूखने या गरम होने का वर्णन नहीं! भाषा को भी अधिक ललित बनाने की कवि ने चेष्टा नहीं की। उसने तो अर्थ से ही अपना सम्बन्ध अधिक रक्खा है। पुराने शब्दों को नये अर्थ प्रदान किए हैं और नये शब्द गढ़े हैं। नीचे घनानन्द के प्रेम वर्णन, संयोग और वियोग का एक-एक उदाहरण देते हैं।

प्रेम—

अति सूधो सनेह को मारग है जहँ नैकु सयानप बाँक नहीं।
तहँ सूधे चलें तजि आपनपो झिझकैं कपटी जे निसाँक नहीं॥
घनआनँद प्यारे सुजान सुनौ इहाँ एक तें दूसरौ आँक नहीं।
तुम कौनधौं पाटी पढ़े हौ कहौ मन लेहु पै देहु छटाँक नहीं॥

संयोग—

संयोग शृङ्गार में मिलन के अतिरिक्त नखशिख का वर्णन भी विशेष रूप से होता है। घनानन्द ने सुजान के नाचने गाने का वर्णन बड़े उत्तम ढङ्ग से किया है। मिलन और अङ्ग-प्रत्यङ्ग का वर्णन भी बहुत अच्छा है। सौन्दर्य में उनका हृदय मग्न हो जाता है।

पानिय अनूप रूप जल को निहारि मन,
गयो हो विहार करिवे कौं चाइ ढरिकैं।
पर्‍यौ जादू रङ्गनि की तरल तरङ्गनि में,
अति ही अपार ताहि कैसे सकै तरिकैं॥
तीर धीर सूझत कहूँ न घन आनन्द यों,
विवस विचारवै थक्यौ बीच ही हहरिकैं।
लेस न सम्हार गहि केसनि मगन भयौ,
बूड़िवेतें वच्यौ को सिवारिकौं पकरिकैं॥

वियोग—

अपनी स्थिति को व्यक्त करते हुए जो विरही ने मार्मिक चित्र उपस्थित किए हैं वे अत्यन्त हृदयस्पर्शी और रम्य हैं—

पहिले अपनाय सुजान सनेह सों क्यों फिरि नेह को तोरिए जू।
निरधार अधार दै धार संझार दई गहि बाँह न बोरिए जू॥
घन आनन्द आपने चातक को गुन बाँधि लै मोह न छोरिए जू।
रस प्याय कैं ज्याय बढ़ाय कै आस बिसास में यों बिष घोरिए जू॥

भाषा के विषय में भी जैसा पहिले कहा जा चुका है ये बड़े सिद्धहस्त कवि हैं। ब्रज भाषा की विशुद्धता मुहावरों का बाहुल्य, विरोध-प्रेम इनकी विशेषताएँ हैं। एक उदाहरण दिया जाता है—

जीभ संभारि न बोलत हौ, मुँह चाहत क्यों अब **खायो थपेरें**।
ज्यों ज्यों **करी कछू कानि कलौड़**, त्यों **मूड़ चढ़े** बड़े आवत नेरें॥
खाइ कहा फल माइ जने, जिय देखौ बिचारि पिता तन नेरें।
कंज कनेरहिं फेर बड़ो, घनआनंद न्यारे रहौ कहौ टेरें॥

उपरोक्त उदाहरण में मुहावरों की कैसी झड़ी लगी है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि ब्रज-भाषा के कवियों में घनानन्द जी का स्थान सभी दृष्टि से अत्यन्त उच्च है।[१]

संकलनकर्त्ता

---

[१] घनानन्द जी के काव्य के ऊपर विस्तृत आलोचना पढ़ने के इच्छुक हमारे यहाँ से श्री० ज्ञानवती त्रिवेदी द्वारा लिखित 'घन आनन्द' मँगा कर पढ़ें।

—प्रकाशक

घनानन्द-रत्नावली

लाजनि-लपेटी चितवनि भेद-भाय-भरी,
लसति ललित लोल चख तिरछानि मैं।
छबि कौ सदन गोरौ बदन, रुचिर भाल,
रस निचुरत मीठी मृदु मुसक्यानि मैं॥
दसन दमक फैलि हियें मोती-माल होत,
पिय सों लड़कि प्रेम पगी बतरानि मैं।
'आनँद' की निधि जगमगति छबीली बाल,
अंगनि अनंग-रंग ढुरि मुरजानि मैं॥१॥

छबि कौ सदन मोद-मंडित बदन-चंद,
तृषित चषनि लाल! कबधौं दिखाइहौ।
चटकीलौ भेष करें मटकीली भाँति सौंही,
मुरली अधर धरे लटकत आय हौ॥
लोचन ढुराय कछू मृदु मुसिक्याय नेह,
भीनी बतियानि लड़काय बतराय हौ।
बिरह जरत जिय जानि आनि प्रान प्यारे,
कृपानिधि 'आनँद कौ घन बरसाय हौ॥२॥

लपेटी=लिपटी या भरी हुई, । ललित=सुन्दर । लोल चख=चंचल नेत्र । सदन=घर । दसन=दांत । दसन दमक होति—दांतों की चमक हृदय पर फैलकर मोतियों की माला का आभास देती है। लड़कि—प्रेम के साथ। बाल—बाला, स्त्री। अनंग=कामदेव। मुरिजानि में—मुड़जाने में।१।

मोद मंडित=आनन्द से भरा हुआ। चटकीलौ=चमकदार। मटकीली भाँति- मटककर, नखरे के साथ। सौंही=सामने।

वहै मुसकानि, वहै मृदु बतरानि वहै,
लड़कीलीबानि आनि उर मैं अरति है।
वहै गति लैनि औ बजावनि ललित बैन,
वहै हँसि दैन हियरा तें न टरति है॥
वहै चतुराई सों चिताई चाहिबे की छबि,
वहै छैलताई न छिनक बिसरति है।
'आनँद', निधान प्रान प्रीतम सुजानजू की,
सुधि सब भाँतिन सौं बेसुधि करति है॥३॥

जासों प्रीति ताहि निठुराई सों निपट नेह,
कैसे करि जिय की जरनि सो जताइए।
महा निरदई दई ! कैसें कै जिवाऊँ जवी,
वेदन की बढ़वारि कहाँ लौं दुगइए॥
दुख के बखान करिबे को रसना कै होति,
ऐयै ! कहूँ वाकौ मुख देखन न पाइए।
रैन दिन चैन को न लेस कहूँ पैयै भाग,
आपने ही ऐसे दोष काहि धौं लगाइए॥४॥

अधर = ओठ। लटकत = बल खाते हुए। दुराय = धीरे से चलाकर। भीनी—भींगी हुई, युक्त। बतराय हौ—बातचीत करोगे। आनंद कौ घन = (१) प्रसन्नता का मेघ (२) कवि का उपनाम।२।

लड़कीली = प्रेम से भरी हुई। बानि = स्वभाव। आनि = आकर। अरति है = अड़ती है; घर कर लेती है। गति लैन = बाँसुरी के बजाने में स्वर को साधना तथा गीत की गति का अनुसरण करना। बैन = बाँसुरी। चिताई = चित्रित की हुई। चाहिबे की — देखने की। छैलताई—रँगीलापन। सुधि = स्मृति। बेसुधि = विस्मृति।३।

भये अति निठुर, मिटाय पहिचान डारी,
याही दुख हमैं जक लगी हाय हाय है।
तुम तौ निपट निरदई, गई भूलि सुधि,
हमैं सूल—सेलनि सो केहूँ न भुलाय है॥
मीठे मीठे बोल बोलि, ठगी पहिले तौ तब,
अब जिय जारत; कहौ धौं कौन न्याय है।
सुनी है कै नाहीं, यह प्रगट कहावत जू,
काहू कलपाय है सु कैसे कल पाय है॥५॥

प्रीतम सुजान मेरे हित के निधान, कहौ।
कैसें रहैं प्रान जो अनखि अरसाय हौ॥
तुम तो उदार दीन हीन आनि परयौ द्वार।
सुनिए पुकार याहि कौ लों तरसाय हौ॥
चातक है रावरौ अनोखौ मोहि आवरौ।
सुजान रूप बावरौ बदन दरसाय हौ॥
बिरह नसाय दया हिय मैं बसाय आय।
हाय कब 'आनन्द' कौ घन बरसाय हौ॥६॥

निठुराई=निष्ठुरता। निपट=अत्यन्त। कैसें करि—किस प्रकार। जिय की जरनि=हृदय का ताप। जताइए=प्रकट करूं, बतलाऊँ। दई=दैव, विधाता। वेदन=पीड़ा। बढ़वारि=अधिकता। दुराइए=छिपाऊं। रसना=जीभ। कै होति=कई होती। अैये... पाइए—पर अरे! वह (जिह्वा) कहेगी कैसे, उसका मुख तो कहीं दिखाई नहीं पड़ता। भाग=भाग्य। काहि धौं—किसे।४।

निठुर=निष्ठुर। मिटाय..डारी=हमको भूल गए। जक=(हाय, हाय की) रट। निपट=अत्यन्त। सूल-सेलनि—पीड़ा की

आस ही अकास मधि अवधि गुनै बढ़ाय।
चोपनि चढ़ाय दीनौ, कीनौ खेल सो यहै ॥
निपट कठोर एहो ऐंचत न आप ओर।
लाड़िले सुजान सों दुहेली दसा को कहै ॥
अचरजमई मोहि भई 'घन आनन्द' यों।
हाथ साथ लाग्यौ, पै समीप न कहूं लहै ॥
बिरह-समीर की झकोरनि अधीर, नेह।
नीर भीज्यौ जीव, तऊ गुड़ी लों उड़यो रहै ॥७॥

जेतो घट सोधौं पै न पाऊं कहाँ आहि सो धौं।
को धौं जीव जारै अटपटी गति दाह की ॥
धूम को न धरै गात सीरो परै ज्यों-ज्यों बरै।
ढरै नैन नीर बीर ! हरै मति आह की ॥
जतन बुझै हैं सब जाकी झर आगें, अब।
कबहूँ न दबै भरी भभक उमाह की ॥
जब तें निहारे 'घन आनन्द' सुजान प्यारे।
तब तें अनोखी आगि लागि रही चाह की ॥८॥

चुभन पी॰ा काँटे की भाँति खटक रही है। केहूँ=किसी प्रकार भी। प्रगट=प्रसिद्ध। कलपाय है=चैन पावेगा।५।

हित=प्रेम। अनखि=झुंझलाकर, रूठकर। अरसाय हौ—(आने में) आलस्य करोगे। कौलौं=कब तक। याहि=प्राण को। मोहि—मोह करके। आवरी—व्याकुल। बावरी—पागल। नसाय=नष्ट कर के।६।

इस कवित्त में जीव का पतङ्ग से रूपक है। आस ही अकास मधि=आशा रूपी आकाश में। अवधि गुनै= अवधि की डोरी।

आँखैं जो न देखैं तो कहा है कछु देखति ये,
ऐसी दुखहाइनि की दसा आय देखिये।
प्रानन के प्यारे जान रूप-उजियारे, बिना,
मिलन तिहारे इन्हैं कौन लेखे लेखिये॥
नीर न्यारे मीन औ चकोर चंद हीन हूँ तैं,
अति ही अधीन दीन गति पेखिए।
हौं जू 'घन आनन्द' ढरारे रस भरे भारे,
चातिक बिचारे सों न चूकनि परेखिये॥९॥

जहाँ तैं पधारे मेरे नैननि ही पाँव धारे,
वारै ये बिचारै प्रान पैंड़-पैंड़ पै मनौ।
आतुर न होहु हा हा नेकु फैंट छोरि बैठौ,
मोहि वा बिसासी को है ब्यौरौ बूझिबो वनौ॥
हाय निरदई को हमारी सुधि कैसे आई,
कौन बिधि दीनी पाती दीन जानि कै भनौ।
झूठ की सचाई छाक्यौ त्यों हित कचाई पाक्यौ,
ताके गुन गन 'घन आनन्द' कहा गनौं॥१०॥

अवधि—वह समय जिसके भीतर लौटने को कह गए थे। चोपनि=चाव से। आप- ओर=अपनी तरफ। दुहेली=कठिन। हाथ... लहै—हाथ का साथ रहने पर भी गुड्डी की भाँति दूर रहता है। विरह—समीर=विरह रूपी पवन। नेह नीर भीज्यौ=स्नेह के जल से भींगा हुआ।७।

इस कवित में प्रेम की अग्नि विलक्षणता बतताई गई है। जेतो=जितनाही। घट=शरीर, हृदय। सोधो=खोजूँ, खोजती हूँ। वी धौं=वह (अग्नि) कोधों=कोन। अटपटी=विचित्र। गति दाह

आसा-गुन बाँधि कै भरोसो-सिल धारि छाती,
पूरे पन-सिंधु मैं न बूड़त सकाय हौं।
दुख-दव हिय जारि अंतर-उदेग-आँच,
निरंतर रोम रोम त्रासनि तचाय हौं॥
लाख-लाख भाँतिन को दुसह दसानि जानि,
साहस सहारि सिर आर लौं चलाय हौं।
ऐसे 'घन आनन्द' गही है टेक मन माहि,
एरे निरदई तोहि दया उप जाय हौं॥११॥

घेर घबरानी उबरानी ही रहति घन,
आनंद आरति-राती साधनि मरति हैं।
जीवन अधार जान, रूप के अधार बिन,
ब्याकुल विकार भरी खरी सुजरति हैं॥
अतन-जतन तें अनखि अरसानो बीर,
परी पीर-भीर क्यों हूँ धीर न धरति हैं।
देखिये दया असाध अखियाँ निपेटिनि की,
भसमी बिथा पै नित लंघन करति हैं॥१२॥

की=जलने का ढङ्ग। विचित्रता वीचे दीहै—धूम को न धरे=धुआँ नहीं सोता। सीरों=शीतल। बरै=जलता है। बीर—हे सखी। हरै मति आह=की 'आह' भी करने की (दुःख से चिल्लाने की) भी इच्छा नहीं पोतीं। जतन बुझै हैं —किसी की यत्न से यह अग्नि शान्ति नहीं होवी। उमाप=असाह। निहारे=देखे। चा=प्रेम।८।

आँधि...... ये=आप को देखअर ये आँखे क्या कुछ देखतीं। दुखहाइन की=दुखियों की। जान=सुजान। रूप को भी प्रकाशित करने वाले; अत्यन्त रूपवान। विना मिलन ....लेखिये—विना

विकच नलिन लखैं सकुचि मलिन होति,
ऐसी कछू आँखिन अनोखी उरझनि है।
सौरभ समीर आय बहकि दहकि जाय;
राग भरे हिय में बिराग मुरझनि है॥
जहां जान प्यारी रूप गुन कौं दीप नत है,
तहां मेरे ज्यौ परै विषाद गुरझनि है।
हाय अटपटी दसा निपट चटपटी सौं,
क्यों हूँ 'घन आनँद' न सूझै सुरझनि है॥ १३॥

तब ह्वे सहाय हाय कैसे धौं सुहाई ऐसी,
सब सुख संग लै बिछोह दुख दै चले।
सींचे रस-रंग अंग-अंगनि अनंग सौंपि,
अंतर मैं विषम विषाद-बेलि बै चले॥
क्यों धौं ये निगोड़े प्रान जान 'घन आनंद' के,
गौहन न लागे जब वे करि विजय चले।
अति ही अधीर भई पीर भीर घेरि लई,
हेली मन-भावन अकेली मोहि कै चले॥ १४॥

तुम्हारे मिले हुए इन की गिनती किसी में नहीं। नीर··· ···हीन—विना पानी के मछली और बिना चन्द्रमा के चकोर। अधीन-विवश। पेखिए-देखिए। चूकनि-भूलकरभी। परेखिए-बुरा न मानिए ॥६॥ प्रेमी के पत्र-वाहक से प्रेमिका का कथन। जहाँ तै···धारे-आप जहाँ से आ रहे हैं वहाँ से मेरे नेत्रों पर ही पैर रख कर आरहे मैंने आप के मार्ग में आँखें बिछा दी थीं। मैं आप की बड़ी प्रतीक्षा कर रही थी। वारै···मनो-और ये मेरे प्राण आपके पग पग पर निछावर होते हैं। आतुर न होहु-जाने की जल्दी न करो। फैंट छोर—फेंटा खोलकर। बिसासी—विश्वास

रोम रोम रसना ह्वै लहै जो गिरा के गुन,
तऊ जान प्यारी ! निबरैं न मैन आरतैं ।
ऐसे दिन दीन पै दया न आई दई ताहि,
विष भोयो विषम वियोगसर मार तैं ॥
दरस सुरस प्यास भांवरे भरत रहौं,
फेरिए निरास मोहि क्यों धों यों बछार तैं ।
जीवन अधार 'घन आनन्द' उदार महा,
कैसे अनसुनी करी चातिक-पुकार तैं ॥ १५ ॥

चातिक चुहल चहुं ओर चाहैं स्वाति ही को,
सूरे पन पूरे जिन्हें विष सम अमी है ।
प्रफुलित होत भान के उदोत कंज-पुंज,
ता बिन बिचार निहीं जोति-जाल तमी है ॥
चाहो अनचाहो जान प्यारे पै 'आनन्द घन'
प्रीति रीति विषम सुरोम-रोम रमी है ।
मोहि तुम एक तुम्हें मो सम अनेक आहि,
कहा कछु चंदहि चकोरन की कमी है ॥ १६ ॥

घाती । ब्यौरौ-विस्तृत वर्णन । घनो-अत्यन्त । पाती-चिट्ठी । भनो-कहो । झूठ··छाक्यों-पक्का झूठा । हित··पाक्यों-प्रेम में पक्का, प्रेम के निर्वाह में कच्चा । गुन-अवगुण ।१७। आसा गुन-आशा रूपी रस्सी । भरोसो-सिल-विश्वास रूपी पत्थर । पन-सिंधु-प्रण रूपी समुद्र । सकाय पौं-आज पीछा करूँगी । दुख-दवाग्नि दुख रूपी दावाग्नि । अन्तर··आँच-हृदय के उद्वेग की अग्नि से । तचाय हौं-तप्त करूँगी । —साहस संभालकर, साहस करके । ओरे लों—ओरा तक ॥ ११ ॥ घेर—घिरकर । उबरानी—ऊबी हुई । आरति-रानी-दुःख से रंगी हुई,

चोप चाह चावनि चकोर भयो चाहत हो,
सुखमा-प्रकास मुख सुधाकर पूरे कौं ।
कहा कहौं कौन कौन विधिकी बँधनि बँध्यौ,
मुकर्‌यो न उकस्यो बनाय लखि जूरे कौ ॥
जाही-जाही अंग पर्‌यौ तौही गरि-गरि सर्‌यौ,
हर्‌यो बल बापुरे अनंग-दल- चूरे कौ ।
अब बिन देखे जान प्यारी यों 'आनन्द घन'
मेरो मन भँवै भटू ! पात ह्वै बघूरे कौ ॥ १७ ॥

बिसु लै बिसार्‌यौ तक कैं बिसाई आप चार्‌यो,
जान्यो हुतौ ! मनतैं सनेह कछु खेल सो ।
अब ताकी ज्वाल में पजरिबौरे भली भाँति,
नीके आहि, असह अंग दुख सेल सो ॥
गए उड़ि तुरत पखेरू लौं सकल सुख,
पर्‌यौ आप औचक बियोग बैरी झेल सो ।
रुचि ही के राजा जान प्यारे यों 'आनन्द घन'
होत कहा हेरे रंग मान लीनो मेल सो ॥ १८॥

दुःखी। साधनि-अभिलाषा (देखने की) के कारण । खरी—अत्यंत । अतन-जतन कामोपचार । बीर --हे सखी । पीर—भीर—अत्यंत पीड़ा । निपेटिन—पेटू, बहुत खाने वाली । भसमी बिथा—भस्मक रोग । ।१२। बिकच-खिला हुआ । नलिन-कमल । उरझनि-उलझन । सौरभ समीर-सुगन्धित पवन । बहकि-सुधि बुद्धि खोकर । दहकि जाय-जलती है । राग·· मुरझानि-जो हृदय किसी समय प्रेम से भरा था, अब उसे सबसे विरक्ति हो गई है और अब वह मुरझा रहा है । गुन-बत्ती । ज्यौ-जीव । विषाद-दुख । गुरझानि-गांठ । अटपटी-विचित्र चटपटी-

सूझै नहीं सुरझ उरझि नेह गुरझनि,
सुरझि मुरझि निस दिन डाँवाडोल है।
आह की न थाह दैया! कठिन भयो निबाह,
चाह के प्रवाह बार्‌यौ दारुन कलोल है॥
वे तौ जान प्यारे निधरक हैं 'अनंद घन'
तिनकी धौं गूढ़ गति मूढ़मति को लहै।
आगे न बिचार्‌यौ अब पाछे पछताएं कहा,
जान मेरे जियरा वनी को कैसे मोल है॥ १९॥

अंतर उदेग दाह आँखिन प्रवाह आंसू,
देखी अटपटी चाह भींजनि दहनि है।
सोइबौ न जागिबौ हू हँसिबौ न रोइबौ हूँ,
खोय खोय आप ही मैं चेटक लहनि है॥
जान प्यारे प्राननि बसत पै 'अनद घन'
बिरह विषम दसा मूक लौं कहनि है।
जीवन मरन जीव मीच बिना बन्यौ आय,
हाय कौन विधि रची नेही की रहनि है॥ २०॥

शीघ्रता से (अपना प्रभाव जमा रही हैं)। सुरझानि—छुटकारे का उपाय।१३। ह्वै-होकर। सुहाई-अच्छी लगी। अङ्ग-अङ्गनि-मेरे प्रत्येक अङ्ग को। अनङ्ग—कामदेव। सौंपि—सुपुर्द करके। ह्वै चलै—होकर चल दिए। निगोड़े-स्त्रियों की गाली (पंगु)। गौहन-साथ। बिजै-विजय। पीर-भीर-पीर की भीड़, अत्यंत पीड़ा। हेती—हे सखी। मन-भावन-प्रियतम।१४। रोम-रोम आरतें-कामदेव इस प्रकार पीड़ा दे रहा है कि, यदि प्रत्येक रोम वाणी का काम करने लगे तो भी उस पीड़ा का वर्णन करना सम्भव नहीं। निवरैं-समाप्त होना। दिन दीन-सदैव ही दीन

नैननि मैं लागे, जाय जागै सु करेजे बीच,
बा बस है जीव धीर होत लोटपोट है।
रोम रोम पूरि पीर व्याकुल सरीर महा,
बूझै मति गति आसैं प्यास को न टोट है॥
चलत सजीवन सुजान दृग हाथनि तैं,
प्यारे अनियारी रुचि रखवारी वोट है।
जब जब आवै तब तब अति मन भावै,
अहा कहा विषम कटाच्छ सर चोट है॥ २१॥

पाती मधि छाती छत लिखि न लिखाए जाहि,
काती लै विरह घाती कीने जैसे हाल हैं।
आंगुरी बहकि तहां पांगुरी किलकि होति,
ताती राती दसनि के जाल ज्वाल माल हैं॥
जान प्यारे जोब कहूँ दीजिए सनेसो ताब,
आवा सम कीजिए जु कान तिहि काल हैं।
नेह भीजी बातैं रसना पै उर आँच लगैं,
जागैं 'घन आनद' ज्यों पुंजनि मसाल हैं॥ २२॥

रहने वाला। मार-कामदेव। तैं-से। दरस...रही-दर्शन के रस की प्यास से चक्कर काटता रहता हूँ। बछार-बोछार। तैं-तू ने ॥१५॥ चुहल-चुह चुहकी ध्वनि; चातकी ध्वनि सर्वत्र स्वाति ही में लिए होती है, सूरे-शूरवीर। पन-पूरे-प्रण के पूरे। उदोत—उदय होने पर। ता विन-विना उस सूर्य के। जोति...तमी-और प्रकाश पुंज अन्धेरी रात के समान है। रमी है-समाई हुई है। कहा कछू कमी है—मेरे लिए तो तुम्हीं एक हो, तुमको चाहने वाले अनेक हैं; चकोरों के लिए तो एक ही चन्द्रमा है।१६। संयोग के पश्चात वियोग में मन की दशा

हिये मैं जु आरति सु जारति उजारति है,
मारति मरोरे जिय डारति कहा करौं।
रसना पुकारि कै बिचारी पचिहारि रहै,
कहै कैसं अकह उदेग रुंधि कै मरौं ॥
हाय कौन बेदनि बिरंचि मेरे बांट कानी,
निवटि परौं न क्यों हूं ऐसी विधि हौं गरौं।
'आनंद के घन' हौ सजीवन सुजान देखौ,
सीरो परी सोंचनि अचभे सों जरौं मरौं ॥ २३ ॥

उठि न सकत ससकत नैन-बान बिंधे,
इतें हूँ पै विषम बिषाद-जुर लू बरै।
सूरे पन-पूरे हेत-खेत तें टरैं न कहूँ,
प्रीति-बोझ बापुरे भए हैं दचि कूबरै ॥
संकट-समूह में बिचारे घिरे घुटैं सदा,
जानी न परत जान! कैसं प्रान ऊबरै।
नेही दुखियान की यहै गति 'आनंद घन'
चिन्ता-मुरझानि सहैं न्याय रहैं दूबरै ॥ २४ ॥

का वर्णन। चोप-उमङ्ग। चाह-अभिलाषा। चावनि-लालसा के साथ। चाहत ही-देखते ही। सुखमा—प्रकाश—सुन्दरता प्रकट करने वाला। सुधाकर—पूरे—पूर्ण चन्द्र। सुकस्यौ—अच्छी तरह कस गया। उकस्यौन-फिर हटा नहीं। बन-शोभा। जूरे कौ-कबरी का, चोटी का। हर्‍यो…चूरे कौ-काम के दल से पराजित मन का बल अपहरण कर लिया। भँवै चक्कर काटता है। पात-पत्ता। बघूरे-बवंडर ॥१७॥ बिसु लै…आप चास्यौ—(हे मन) जब तैंने प्रेम प्रेम का विष लिया और उसे लेकर भूल गया कि तेरे पास विष है, तब तैं ने अपना

14456

सुखनि समाज साज सजे तित सबै सगा,
जित नित नए हित-फन्दनि गसत हौ।
दुख-तम-पुंजनि पठाय दै चकोरनि पै,
सुधाधर जान प्यारे! भले ही लसत हौ॥
जीव सांच सूखै गति सुमिरे 'अनद घन'
कितहूँ उघरि कहूँ घुरि कै रसत हौ।
उजरनि बसी है हमारी अँखियानि देखौ,
सुबस सुदेस जहाँ भावते! बसत हौ॥ २५॥

तपति उसास आँधि रूंधिए कहां लौं दैया,
बात बूझै सैननि ही उतर उचारियै।
उड़ि चल्यो रंग कैसे राखियै कलंकी मुख,
अनलेखें कहाँलौं न घूंघट उघारियै॥
जरि बरि छार ह्वै न जाय हाय ऐसी बैस,
चित चढ़ी मूरति सुजान क्यों उतारियै।
कठिन कुदाय आय घिरी हौं 'अनद घन'
गावरी बसाय तौ बसाय न उजारियै॥ २६॥

इलाज अपने आप कर लिया। यही बात तेरे कष्ट का कारण हुई। ताकी-उसकी, विप की। पजरिबो-जलन। नीके आहि-अच्छा है। (व्यङ्ग)। सेल-बर्छी। सौ-समान। पखेरू-पक्षी। रुचि ही के राजा… मेल सो-आनन्द घन तो रुचि के राजा हैं, मनमौजी हैं, उन्होंने कभी साधारण रूप से ही इधर देख लिया, पर मेरे रंक मन ने उस सामान्य दृष्टि को प्रेम की दृष्टि समझ लिया और समझने लगा कि मेरा उनसे मेल है॥१८॥ सुरझ-सुलझने का उपाय। उरझि=उलझकर। नेह—गुरझनि=प्रेम की गाँठ। मुरझि · डांवा डोल है=वह गाँठ

राति द्योस कटक सजेही रहै दहै दुख,
कहा कहौं गति या बियोग बजमारे की।
लियो घेरि औचक अकेलौ कै बिचारो जीव,
कछु न बसाति यों उपाय-बल-हारे की ॥
जान प्यारे लागौ न गुहार तौ जुहार करि,
जूझि है निकसि टेक गहे पन धारे की।
हेत-खेत-धूरे चूरिचूरि ह्वै मिलैगो तब,
चलैगी कहानी 'घनआनँद' तिहारे की ॥ २७ ॥

जान प्यारी ! हौं तौ अपराधनि सों पूरन हौं,
कहा कहौं ऐसी गति आवत गरो रुक्यो।
साध मारे सुधा तो सुभाइ के मिठासै, ताकी,
आसा लै दहनि भै चरन कंज लौं ढुक्यो ॥
इतै पै जो रोस कै रसीलो हियो पाढ़ौ करौ,
तौ न कहूँ ठौर जीवेहू को झगरा चुक्यो।
ऐसे सोच आंचनि 'अनंद घन' सुखनिधि,
लपट कढ़े न नेकौ हाहा जात ज्यौं फुक्यौ ॥ २८ ॥

एक तो उलझ गई है, फिर घुट गई है और उस पर भी रात दिन चंचल है, तब भला कैसे सुलझ सकती है। निवाह=निर्वाह। कलोल-शब्द। निधरक=निश्चिन्त। गूढ़ मति=मूर्ख। वनी=वाणिज्य। वनी को कैसो मोल है—अब मेरा हृदय ही जानता है कि प्रेम के सौदे का कैसा मूल्य है ॥१६॥ प्रेमी के जीवन की विलक्षणता का वर्णन है। अन्तर-हृदय। उदेग दाह-दुःख की जलन। अटपटी-विचित्र। दहनि=जलना। जलना और भीगना दोनों है, यही विचित्रता है। खोय…आप ही में=अपने को अपने में ही खो देते हैं। चेटक-जादू।

सुधा तें स्रवत बिष, फूल में जमत सूल,
तम उगिलत चंद, भई नई रीति है।
जल जारै अंग, और राग करै सुरभंग,
संपति बिपति पारै, बड़ी बिपरीति है॥
महागुन गहै दोषै, औषधि हूँ रोग पोषै,
ऐसें जान रस मांहि बिरस अनीति है॥
दिननि को फेर मोहि तुम मन फेरि डारयो,
अहो 'घन आनन्द' न जानौं कैसी बीति है॥ २९॥

गरल गुमान की गरारनि दसा को पान,
करि करि द्योस रैन प्रान घट घाटिबो।
हेत खेत धूरि चूरि चूरि सीस पाँव राखि,
बिषम उदेगवान आगें उर ओटिबो॥
जान प्यारे जो न मन आनै तौ 'आनन्द घन',
भूलिहू न सुमिरि परेखें चरन चोटिबो।
तिन्हें यों सिराति छाती तोहि क्यों लगति ताती,
तेरे बांटे आयो है अंगारनि पै लोटिबो॥ ३०॥

जान...मूक लौं कहनि है = यद्यपि सुजान प्यारे हृदय में रहते हैं, तो भी विरह है और विरह—की दशा का वर्णन भी नहीं हो सकता। वह गूंगे के गुड़ के समान अकथनीय है। जीवन...आय = बिना प्राण के जी रहे हैं और बिना मृत्यु के मर रहे हैं॥ २०॥ इस छन्द में कटाक्ष के बाण की विचित्रता का वर्णन है—नैननि ...बीच = ये बाण लगते तो नेत्रों में हैं, पर चोट करते हैं हृदय पर (असंगति)। धीर = धीर पुरुष भी घूमैं। मति गति = बुद्धि की गति चक्कर में पड़ जाती है। आसैं—मुख में। टोट = कमी। दृग-हाथनि

विकल विषाद भरे ताही की तरफ तकि,
दामिनि हूँ लहकि बहकि यों जरयो करै।
जीवन-अधार-घन-पूरित पुकारिन सों,
आरत पपीहा नित कूकनि करयौ करै॥
अथिर उदेग गति देखिकैं 'आनन्दघन'
पौन विडरयौ सौ बन बीथनि रस्यो करै.
बूंद न परति मेरे जान जान प्यारी! तेरे,
बिरही को हेरि मेघ आँसुनि झरयौ करै॥ ३१॥

तेरे देखिबे को सबही तें अनदेखी करा,
तूहूँ जो न देखै तो दिखाऊँ काहि गति रे।
सुन निरमोही एक तोही सों लगाव मोहि,
सोही कहि कैसें ऐसी निठुराई अति रे॥
विष सी कथानि मानि सुधा पान करयौ जान,
जीवन निधान है बिसासी मारि मति रे।
जाहि जो भजै सो ताहि तजै 'घन आनँद' क्यों,
हति कै हितूनि कहाँ काहू पाई पति रे॥ ३२॥

तैं=नेत्र रूपी हाथों से। प्यारे···चोट है=प्रेमी की विचित्र रुचि ही इस वाण से रक्षा करती है। वही एक आड़ है॥ ३१॥
पाती=चिट्ठी। छत=घाव, दुःख। लिखि···जाहिं=लिखते ही नहीं बनते। काती=छुरी। बहकि=कम्प जाती हैं। पांगुरी=पंगु हो जाती है। किलकि=कलमा। ताती-गरम, दुःखपूर्ण। राती-जोब-जो अब। तो ब-तो। दीजिए सनेसौयदि संदेशा किसी से कहकर भेजा जाय। तो सुनने वाले के कान आवा के समान गरम हो जाते हैं। नेह भीजी··लागे- स्नेह से भी भीगी हुई बातें ज्यों ही जीभ पर आती

लगी है लगनि प्यारे ! पगी है सुरति तो सों,
जगी है विकलताई, ठगि सी सदा रहौं।
जियरा उड्यो सो डोलै, हियरा धक्योई करै,
पियराई छाई तन, सियराई दौ दहौं ॥
ऊनो भयो जीवौ अब सूनो सब जग दीसै,
दूनो दूनो दुख एक एक छिन मैं सहौं।
तेरे जौ न लेखो मोहि मारत परेखौ महा,
जान 'घनआनन्द' पै पाइबो लहा लहौं ॥२३॥

कौन की सरन जैये, आपु त्यौं न काहू पैये,
सूनो सो चितैये जग, दैया कित कूकियै।
सोचनि समैये, मति हेरत हिरैये, उर,
आंसुनि भिजैये, ताप तैये, तन सूकियै ॥
क्यों करि बितैयै कैसे कहा धौं गितैयै मन,
बिना जान प्यारे कब जीवनि तें चूकियै।
बनी है कठिन महा मोहि 'घन आनद' यों,
मीचौ मरि गई आसरौ न जित ढूकियै ॥ २४ ॥

है, वैसे ही हृदय में आग लग जाती है ॥२१॥ उजरति है-उजाड़ रही है। पचिहारि-थक कर रह जाती है। रुंधि के मरों-दुःख कहा नहीं जाता, अतः मैं घुट कर मरता हूँ। वेदनि-दुःख। बांट-भाग में। निघटि···गरों-इस प्रकार गलती हूँ कि कोई अङ्ग कम होता नहीं दिखाई पड़ता। सीरी-ठंड। भरों-कष्ट सहती हूँ ॥ २३ ॥ इस छन्द में प्रेमियों के दुर्बल तथा क्षीणकाय होने का कारण बताया गया है। ससकत-सिसकते हैं। नैन···बिधै-नेत्र रूपावाणों से घायल हो कर। जुर-ज्वर। लू-लू की भाँति। बरै-जलता है। पन-पूरे-प्रण के पक्के।

अधिक बधिक तें सुजान रीति रावरी है,
कपट-चुगौ दै फिरि निपट करौ बरी।
गुननि पकरि लै निपांख करि छोरि देहु,
मरहि न जीयै महा बिषम दया छुरी॥
हौं न जानौं कौन धौं है या मैं सिद्धि स्वारथ की,
लखी क्यों न परति प्यारे अन्तर कथा दुरी।
कैसे आसा-द्रुम पै बसेरौ लहै प्रान-खग,
बनक निकाई 'घन आनन्द' नई जुरी॥ ३५॥

मेरो मन तोहि चाहै तू न तनकी उमाहै,
मीन जल कथा है कि याहू ते बिसेखिये।
ता बिन सो मरै छूटि परै जड़ कहां टरै,
मरौं हौं न मरौं जान हिए अवरेखिए॥
पल की छोंह आगे कलपौ अलप लागै,
बिलपौं सदाई नेक तलफनि देखिए।
सूनो जग हेरौं रे अमोही कहि काहि टेरौं,
'आनन्द के घन' ऐसी कौन लेखें लेखिए॥ ३६॥

हेत-खेत-प्रेम के क्षेत्र। कूकरे-कुबड़े। ऊबरे-बचे हुए। न्याय रहैं दूबरे-यह ठीक ही है कि वे दुबले रहें॥ २४॥ सुखाने समाज-अनेक सुख। तित-वहाँ। जित—जहाँ। हित गसत हौ-प्रेम के फन्दों में पड़े हुए हो। दुःख तम लसत हौ-अपने चाहनेवाले चकोरों पर तुम दुःख रूपी घोर अन्धकार भेज कर बड़े—अच्छे लगते हो (व्यङ्ग से) । सोच-सूखे-सोच से सूखता है गति सुमिरे-तुम्हारे ढङ्ग की याद करके। उघरि-खुलकर [बादल (घन) के कारण]। घुरिकै—घुल कर, सरस हो कर। रसत हौ-रस बरसाते हो। उजरनि बसी है-अजड़पन छा गया

मुरझाने सबै अंग, रह्यो न तनक रंग,
वैरी सु अनंग पीर पावै जरि गयो ना।
इते पै बसंत सो सहायक समीप याके,
महा मतवारौ कहूँ काहूँ तें जु नयो ना॥
सीखे नए नीके जी के गाहक सरनि लै लै,
बेधैं मन को कपूत पिता मोह भयो ना।
पवन गवन संग प्राननि पठाय हौं तौ,
जान 'घन आनँद को आवन जो भयौ ना॥ ३७॥

एरे बीर पौन! तेरौ सबै ओर गौन वारी,
तो सों और कौन मनै ढरकौहीं बानि दै।
जगत के प्रान ओछे बड़े सों समान 'घन-
आनँद' निधान सुख दान दुखियान दै॥
जान उजियारे गुन भारे अति मोही प्यारे,
अब ह्वै अमोही बैठे पीठि पहिचानि दै।
विरह बिथा को मूरि आंखिन मै राखौं पूरि,
धूरि तिय पायनि की हा हा नैकु आनि दै॥ ३८॥

है। सुबस-भली-भाँति बसा हुआ। भावतें बसत हो-हे प्रिय जहाँ तुम रहते हो॥२५॥ तपति उसास—सांसें गर्म होकर निकली जारही हैं। औधि...दैया—हे देव! अवधि से कहाँ तक उनको रोके रहूँ, क्योंकि तुम्हारी अवधि का कुछ ठिकाना ही नहीं। सैननि—आंख के संकेत से ही। उड़ि चल्यौ रङ्ग इत्यादि मुख का रङ्ग उड़ गया है और उसे छिपाने को कहाँ तक घूंघट न खोलूं। बैस—उम्र। कुदाय—बुरे फंदे में (पड़ गई हौं)। बसाय—वश चले बसाय एक बार बसाकर॥२६॥ कटक—सेना। बजमारे—स्त्रियों की गाली। बसाति—

एकै आस, एकै बिसबास, प्रान गहैं बास,
और पहिचानि इन्हें रही काहू सौं न है।
चातक लौं चाहै 'घन आनँद' तिहारी ओर,
आठौ जाम नाम लै बिसारि दीनौ मौन है॥
जीवन-अधार जान सुनियै पुकार नेक,-
अनाकानी दैबो दैया धाय कैसो लौन है।
नेहनिधि प्यारे गुन भारे ह्वै न रूखे हूजै,
ऐसौ तुम करौ तौ बिचारन के कौन है॥ ३९॥
पीरी परी देह छीनी राजत सनेह भीनी,
कीनी है अनंग अंग अंग रंग बौरी सी।
नैन पिचकारी ज्यों चल्योई करैं रैन दिन,
बगराए बारनि फिरत झकझोरी सी॥
कहां लौं बखानौ 'घन आनंद' दुहेली दसा,
फागमई भई जान प्यारी वह भोरी सी।
तिहारे निहारे बिन प्राननि करत होरा,
बिरह अंगारनि मगारि हिय होरी सी॥४०॥

बश नहीं चलता। उपाय—व्रत-हारे—जिसको न कोई उपाय सूझता है और न जिसमें कुछ शक्ति ही शेष है। लागौ न गुहार—पुकार न सुनोगे। जुहार-प्रणाम।२७। पूरन हौं-पूर्ण हूँ। गरो रुक्यो—अपने अपराधों का वर्णन नहीं कर सकता गला रुक जाता है। साध मिठासैं-तेरे स्वभाव के मिठास के सामने अमृत की भी अभिलाषा नहीं होती। ताकी-उसकी। त्यों-उसी प्रकार। दुक्यो-छिप गया है। इते पै-इतने पर भी। रोस-क्रोध। पोढ़ो-कठोर। ठौर-स्थान। जीवे हू को झगरौ चु891.2 G 87 B झंझट नहीं रहा। लपट-लौ।

कहाँ एतौ पानिप बिचारी पिचकारी धरै,
आँसू-नदी नैननि उमगियै रहति है।
कहाँ ऐसी राँचनि हरद केतू केसरि मैं,
जैसी पियराई गात पगियै रहति है
चाँचरि चौपही हू तौ औसरही माचति पै,
चिन्ता की चहल चित लगियै रहति है।
तपनि बुझै बिन 'आनंद घन' जान बिन,
होरी सी हमारे हियें लगियै रहति है ॥४१॥

दसन-बसन आली भरियै रहै गुलाल,
हँसनि-लसनि त्यों कपूर सरस्यौ करै।
साँसनि सुगंध सोंधे कोटिक समोय धरे,
अंग अंग रूप रंग रस बरस्यौ करै॥
जान प्यारी ! तौ तन 'अनंद घन' हित नित,
अमित सुहाग राग फाग दरस्यौ करै।
इते पै नवेली लाज अरस्यो करै जु, प्यारौ,
मन फगुआ दै गारी हूँ कौं तरस्यौ करै ॥४२॥

फुक्यौ-जला ॥२८॥ सुधा—अमृत। स्रवत बहता है। सूल—काँटा। राग-सुर भङ्ग—सुर नष्ट हो जाता है। गहा गुन गहै दोष—बड़ा भारी गाना भी दोष हो जाता है। पोषै-बढ़ाता है। फेर—चक्कर, परिवर्त्तन। मन फेरि डार्‌यौ—मन मोड़ लिया ॥ २९ ॥ गरल—विष। गरावनि-गलाने वाली गरल करि करि-विष के गर्व को भी नष्ट करने वाली—कठिन दशा को सह कर। प्रान घट घोटिवो—तुझ को अपने प्राणों को शरीर में घोटना बदा है। सीस पाँव राखि—शिर पर पैर रखकर। ओटिवो—(कठिन उद्वेग के

फागुन महीना की कही ना परै बातैं, दिन-
राातैं जैसे बीतत सुनै तें डफ घोर कों।
कोऊ उठै तान गाय प्रान बान पैठि जाय,
चित बीच ए री ! पै न पाऊं चितचार कों ॥
मची है चुहल चहूँ ओर चोप चाँचरि सों,
कासों कहौं सहौं हौं वियोग झकझोर कों।
मेरौ मन आली ! वा बिसासी बनमाली बिनु,
बावरे लौं दौरि दौरि परै सब ओर कों ॥४३॥

करुयो मधुर लागै वाको बिसु अंग भयें,
याहि देखे रसहू में कटुता बसति है।
वाके एक मुख ही तें बाढ़त बिकार तन,
यह सरवंग आनि प्राननि गसति है।
सुन्दर सुजान जू सजीवन तिहारो ध्यान,
तासों कोटि गुनी ह्वै लहरि सरसति है।
पापिनि डरारी भारी साँपिनि निसा बिसारी,
बैरिनि अनोखी मोहि डाहनि डसति है ॥४४॥

सामने हृदय को) अड़ा देना है। परेखें पश्चाताप। चख चोटिवो—आँख लगाने को (स्मरण न कर) तेरे बाँटे लोटिवो—तेरे भाग्य में तो अंगारों पर लोटना ही बदा है, कष्ट सहना ही तेरे हिस्से में है। प्रेमी का कथन अपने आप से ही है ॥ ३० ॥

दूती का वचन नायिका से। वह कह रही है कि तुम्हारे वियोग में नायक भी दुःखी है। इस समाचार से विरहणी को कुछ संतोष होगा। ताही-उसी (नायक)। ताक-देखकर। दामिनि-बिजली। जरयौ करै-जलती रहती है, चमकना यहाँ जलना कहा गया है।

कारी कूर कोकिल ! कहाँ को बैर काढ़ति री,
कूकि कूकि अबहीं करेजौ किन कोरि लै।
पैंड़े परे पापी ये कलापी निस द्योस ज्योंहीं,
चातक ! घातक त्योंहीं तुहू कान फोरि लै॥
'आनंद' के 'घन प्रान जीवन सुजान बिना,
जानि कै अकेली सब घेरौ दल जोरि लै।
जौ लौं करैं आवन बिनोद-बरसावन वे,
तौ लौं रै डरारे बजमारे घन घोरि लै॥४५॥

अंतर मैं बासी पै प्रवासी कैसो अंतर है,
मेरी न सुनत दैया आपनीयौ ना कहौ।
लोचननि तारे ह्वै सुझावो सब सूझै नाहिं,
बूझी न परति, ऐसो सोचनि कहा दहौ॥
हौ तौ जानराय जाने जाहु न अजान या तें,
'आनद' के 'घन' छाया छाय उघरे रहौ।
मूरति मया की हा हा सूरति दिखैए नेकु,
हमैं खोय या बिधि हो कौन धौं लहा लहौ॥४६॥

जीवन··सौं-तुम्हारे जीवनाधार की प्रणपूर्ण पुकारों को सुनकर। आरत-आर्त्त, दुःखी। अथिर-चंचल। विडर्यो-इधर उधर हो कर। ररयौ करै-रटता रहता है॥३१॥ अनदेखी करी-सब की ओर देखना छोड़ दिया सबसे सम्बन्ध तोड़ दिया। गति दशा। लगन-सम्बन्ध। सोही-शोभा दी। निठुराई-निष्ठुरता। बिसासी-विश्वासघाती। हातिकै-मार कर हितूनि-प्रेमियों को। पति-प्रतिष्ठा ॥३२॥ सुरति-स्मृति, याद, पगी है तोसों-स्मृति में तुम बस गए हो। जियरा-मन। हियरा-हृदय-धकधोई-धक धक। सियराई दौ दहौं-शीतलता की दावाग्नि में जल रही

मोहन अनूप रूप सुंदर सुजान जू को,
ताहि चाहि मन मोहि दसा महा मोह को।
अनोंखी हिलग दैया ! बिछुरै तौ मिल्यौ चाहै,
मिले हूँ में मारै जारै खरक बिछोह की।
कैसैं धरौं धीर बीर ! अति ही असाध पीर,
जत्न हीन रोग याहि नींकैं करि टोह की।
देखैं अनदेखैं तहीं अटक्यो अनंदघन'
ऐसी गति कहौ कहा चुंबक औ लोह की ॥४७॥

जोई रात प्यारे संग बातनि न जात जानी,
सोई अब कहाँ तैं बढ़नि लिए आई है।
जोई दिन कंत साथ जीवन को फल लाग्यो,
सोई बिन अंत देत अंतक दुहाई है॥
इनकी तौ रहौ मेरे अंग अंग औरै भए,
सूखी सुखलता झलरति मुरझाई है।
आली ! 'घन आनन्द' सुजान सों बिछुरि परें,
आपौ ना मिलत महा बिपरीति छाई है ॥४८॥

हूँ, ठंडी पड़ रही हूँ। अदौ-सार हीन। ज्यौ-ज्यौं, हृदय में। परेखौ-तुम्हारे कामों से दुःख। पोईयौ लहा लहों-सुजान होते हुए भी मैं तुम्हारे हाथों से खोने का ही लाभ पाती हूँ ॥३३॥ आपुस्यौं-आपके समान। कूकिए-चिल्लाये। समैये-डूबती हूँ। तैयै-गर्म होती हूँ, संतप्त होती हूँ। रितैयै-खाली करूँ, किस प्रकार अपने मन व्यथा प्रगट करूँ। जीवन तैं चूकियै-प्राण छोड़ूँ। बनी है कठिन-बड़ी विषम परिथिति है। मीचौ-मृत्यु भी दूकि रै-शरण लूं, जिसकी। आशा करूँ, जहां छिपूँ ॥३४॥ अधिक—बढ़कर। कपट—चुगौ—कपट रूपी चाल (दाना)।

घर बन बीथिन मैं जित तित तुम्हैं देखौं,
इतेहू पै जा न! भई नई बिरहा मई।
बिषम उदेग आगि लपटैं अँतर लागैं,
कैसे कहौं जैसे कछू तचनि महा तई॥
फूटि फूटि टूक टूक ह्वै कै उड़ि जाय हियौ,
बचिबो अचंभो मीचौ निदर करै गई।
'आनंद' के 'घन' लखें अनलखें दुहूं ओर,
दई मारी हारी हम आप हौ निरदई॥४९॥

मिलत न कहूँ भरे, रावरी अमिलताई,
हिए मैं किए बिसाल जे बिछोह-छत हैं।
प्रीतम अनेरे! मेरे घूमत घनेरे प्रान,
बिष भोए बिषम बिसास-बान-हत हैं॥
प्यार में परम पूरो, सुन्योहू न हो सो देख्यो,
जान परी जान! ये अमोहिन के मत हैं।
पौन को प्रवेस हो न जहाँ 'घनआनन्द' यों,
तहां लौ कहां तैं बीच पारे परबत हैं॥५०॥

निपट—अत्यन्त। गुननि—(१) अपने गुण (२) रस्सी। निपाख—बिन पंख के (२) किसी ओर का नहीं। मरहि...जीर—न मरते है और न जीते ही हैं। दुरी—छिपी हुई। बनक—वेश। नई—विचित्र॥३५॥ जड़—जल से अभिप्राय है। कलपौ—कल्प भी। अलप—थोड़ा। तलफनि—तड़फना। अमोही.....टेरों—'अमोही' कहकर किसको बुलाऊँ। [मछली तो प्राण देकर छुटकारा पा लेती है, पर मैं तो जीवित रहकर कष्ट पाती हूँ॥३६॥ अनंग-कामदेव। पीर पावै-दुःखी होवे। जरि गयो न-जल क्यों न गया। नयो-झुका, दबा। सरनि-बाणों को।

आनाकानी-आरसी निहारिबो करौगे कौ लौं,
कहा मो चकित दसा त्यों न दीठि डोलि है।
मौनहू सों देखिहौं कितेक पन पालिहौ जू,
कूक भरी मूकता बुलाय आप बोलि है॥
जान 'घनआनन्द ! यों मोहिं तुम्हैं पैज परी,
जानियैगो टेक टरैं कौन धों मलोलि है।
रुई दिये रहौगे कहाँ लौं बहराइबे को,
कबहूँ तो मेरियै पुकार कान खोलि है॥५१॥

रूप उजियारे जान ! प्राननि के प्यारे कब,
करौगे जुन्हैया दैया बिरह महा तमैं।
सुखद सुधा सी हँसि हेरनि पिवाइ पिय,
जियहि जिवाइ मारिहौ उदेग से जमैं॥
सुंदर सुदेस आखैं बहुरयौ बसाय आय,
बसिहौ छबीले जैसे हुलसि हिए रमैं।
ह्वै है सोऊ घरी भाग-उघरी 'आनन्दघन'
सुरस बरसि लाल देखिहौ हरी हमैं॥५२॥

कपूत—कुपुत्र, मनका पुत्र होकर मनोज मन को ही कष्ट देता है, अतः कुपुत्र है। मयो—दया। पवन ··भयो ना—यदि घन आनन्द का आना नहीं हुआ तो पवन के साथ उनके पास अपने प्राणों को ही भेज दूंगी ॥ २७ ॥ वारी-मैं तुम पर निछावर हूँ। तो सों-तेरे समान। ढरकौंही-कृपापूर्ण। बानि—स्वभाव। औछे-छोटे। पीठि पहिचानि दै-सब पहिचान को भूल कर। मूर—जड़ी। पूरि-भर कर। नैकु—थोड़ी सी। आनि दै—ला दे ॥२८॥ प्रान गहैं बास-एक ही स्थान पर बस गए हैं। लों—समान। जाम - याम, प्रहर। बिसारि ··

तेरी बाट हेरत हिराने औ पिराने पल,
थाके ये बिकल नैना ताहि नपि नपि रे।
हिए मैं उदेग आगि लागि रही राति द्यौस,
तोहि कों अराधौं जोग साधौं तपि तपि रे।
जान 'घन आनन्द' यों दुसह दुहेली दसा-
बीच परि परि प्रान पिसे चापि चपि रे।
जीवे तें भई उदास तऊ है मिलन-आस,
जीवहि जिवाऊं नाम तेरौ जपे जाप रे॥५३॥

तोहि सब गावैं एक तोहि को बतावैं बेद,
पावैं फल, ध्यावैं जैसो भावनानि भरि रे।
जल-थल-व्यापी सदा अंतरजामी उदार,
जगत में नाम जानराय रह्यौ परि रे।
एते गुन पाय हाय छाय 'घन आनंद' यों,
कैधौं मोहिं दीस्यौ निरगुन ही उघरि रे।
जरौं बिरहागिनि मैं करौं हौ पुकार कासों,
दई! गयो तूहूँ निरदई ओर ढरि रे॥५४॥

मौन है—प्रति पल चिल्लाते रहते हैं। आनाकानी—टालमटूल। घाय कैसो लौन—घाव का सा नमक ॥३६॥ छीनी—क्षीण, दुबली, पतली। सनेह भींनी—स्नेह से सनी हुई। बगराए-बिखरे हुए। दुहेली-कठिन। होरा-भुने हुए हरे, कच्चे चने। मगारि-नायिका? विरहिणी नायिका के शरीर में होली का दृश्य ॥४०॥ बिरहिणी नायिका के हृदय में सदैव होली का जलना दिखाई देता है। एतो-इतना। पानि-पानी। परांचनि-रंग। केसू-ढाक के फूल। गात-शरीर। चांचरि··'माचति-होली के विविधि गाने तो कभी-कभी अवसर पर ही ही होते हैं। चिंता···

चंदहि चकोर करै सोऊ ससि देह धरै,
मनसा हू ररै एक देखिबे कों रहै द्वै।
ज्ञानहू तें आगे जाकी पदवी परम ऊँची,
रस उपजावै तामें भोगी भोगलात ग्वै।
जान 'घन आनन्द अनोखो यह प्रेम पंथ,
भूले ते चलत रहैं, सुधि के थकित ह्वै।
बुरौ जिन मानौ जौ न जानौ कहूँ सीख लेहु,
रसना के छाले परैं प्यारे नेह नांव छ्वै ॥५५॥

नित ही अपूरब सुधाधर वदन आछो,
मित्र-अंक आए जोति-ज्वालनि जगतु हैं।
अमित कलानि-ऐन, रैन द्योस एक रस,
केस तम संग रंग राँचनि पगतु है॥
सुनि जान प्यारी 'घन आनन्द' ते दूनो दिपै,
लोचन चकोरनि सों चोंपनि खगतु है।
नीठि डीठि परैं खरकत सो किरकिरी लौं।
तेरे आगे चन्द्रमा कलंकी सो लगतु है ॥५६॥

रहती है...पर चिन्ता की चहल—पहल हृदय में सदैव रहती है। चौपई—होली के अवसर पर एक प्रकार का सामूहिक गान॥ ४१ ॥ दसन-वसन—दाँतों के वस्त्र, ओठ। ओली—झोली। भरिये रहै गुलाल - सदैव गुलाल भरे रहती है। ओठों में लाली छाई रहती है। हँसनि करै—हँसने की शोभा में कपूर की छटा रहती है। सों धे—सुगंधित पदार्थ। समोय धरै—मिलाए रहती है। रूप-रंग-रस रूप और रंग रस। तो तन—तेरे शरीर में। लाज जरस्यौकरै—लाज से आलस करती रहती है। ॥४२॥ डफ घोर कों—डफ के घोर शब्द को सुन

उघरि नचे हैं, लोकलाज ते बचे हैं, पूरी-
चोपनि रचे हैं, सुदरस लोभी रावरे।
जके हैं थके हैं, मोह मादिक छके हैं, अन-
बोले पै बके हैं दसा, चीतैं चित चावरे॥
औसर न सोचैं 'घन आनन्द' बिमोचैं जल,
लोचैं वही मूरति अरवरानि आवरे।
देखि देखि फूलैं ओट भ्रम नहीं भूलैं, देखौ,
बिन देखे भए ये बियोगी दृग बावरे॥५७॥

ह्वै है कौन घरी भाग-भरी पुन्य-पुंज-फरी,
खरी अभिलाषनि सुजान पिय भेटिहौं।
अमी-ऐन आनन कौ पान प्यासे नैननि सों-
चैननि ही करिकै, बियोग ताप मेटिहौं॥
गाढ़े भुजदंडनि के बीच उर-मंडन कों,
धारि 'घन आनन्द' यों सुखनि समेटिहौं।
मथत मनोज सदा मो मन, पै हौहूँ कब,
प्रानपति पास पाय तासु मद फेटिहौं॥५८॥

कर ॥४३॥ मधुर-मीठा। बाभी-साँपिन का। याहि—रात को। सरवंग-सब अङ्गों से। गसति है—ग्रसती है। लहरि—विष का प्रभाव। सरसति है-बढ़ती है। डरारी-भयानक। बिसारी-विषैली ॥४४॥ किन—क्यों नहीं। कोरि लै खोद ले। पैंड़े परे—पीछे पड़ गए हैं। कलापी—मोर। दल जोरि लै—अपना दल इकट्ठा करके। विनोद- वरसावन—आनन्द वरसाने वाले। डरारे—भयानक। बज-मारे—तुझ पर बज्र पड़े। घोरि लै—गरज ले।४५। अंतर—हृदय प्रवासी—परदेसी। अंतर—दूरी; बूझी न परति—यह समझ में

सोए बहुतेरौ, मेरौ सोचहूँ निबेरौ, हेरौ;
हौं न जानौं कब धौं उनींदे भाग ! जागोगे।
पीर-भरे लोचन ! अधीर हौं न जानत जू,
कौन घरी रूप के रसोत जगमगोगे॥
अंग अंग ! तुम्हैं कौलों दहैगो अनंग कहूँ,
रंग भरी देह जानि प्यारे संग खगौगे।
चलौ प्रान ! पलौ परे दूरि यौं कलमलौ क्यौं,
बिना 'घन आनन्द' केतेक दुख दगोगे॥५९॥

तुम दीनी पीठि, दीठि कीनी सनमुख याने,
तुम पैंड़े परे राखि रह्यो यह प्रान कों।
तुम बसौ न्यारे, यह नेकहूँ न हातो होय.
तुम दुखदाई यह करै सुख दान कों॥
सुनौ 'घन आनन्द' सुजान हौ अमोही तुम,
याको महामोह मों बिना न जानै आन कों।
और सबै सहौं कछू कहौं न कहा है बस,
तुम्हैं बदौं तोपैं जो बरजि राखौ ध्यान कों॥६०॥

नहीं आता। दहौ—जलाते हो। अजान—(१) जो न जाना जाय (२) मूर्ख। उघरे रहो—खुले रहते हो, कहीं दूर रहते हो। मया—दया। लहा-लाभ। लहौ-पाते हो॥४६॥ चाहि—देखकर। मनमोहि—मेरे मन को। हिलग—लाग, प्रेम। खरक – खटका, आशङ्का। रोह—खोज। देखे अनदेखे—देखने पर भी और न देखने पर भी॥ ४७॥ सोई—वही रात। बढ़ानि आई है—इतनी बढ़गई है। बैन अंत—अनंत होकर, बहुत लम्बा हो कर। अंतक—काल। झालरति मुरझाई है—मुरझाना हरा भरा हो रहा है अर्थात प्रत्येक अंग सूख रहा

बिरह-तपत आछे आँसुन सों च्वाय चोवा,
पाइनि पखारि सीस धारि छिन छूजिए।
चूमि चूमि चोपनि लगाय लालसानि भाल,
मंजन कपोलनि कै प्रांननि लै पूजिए॥
एहो 'घन आनंद' सुजान रावरे जू सुनौ,
रावरी सौं और हिएं मनसा न दूजिए।
निरमोही महा हौ पै मया हू बिचारि बारी,
हाहा नेकु नैननि अतीत किन हूजिए ॥६१॥

चोरयौ चित चोपनि, चितौनि मैं चिन्हारी करि,
चाह सी जनाय हाय मोहि कै मनौ लियो।
भोरी भोरी बातनि सुनाय, जान! भोरे प्रान,
फाँसी तें सरस हाँसी-फंद छंद सों दियो॥
छलनि छबीले आय छाय 'घन आनन्द' यों,
उघरे बिसासी! अंत, निरदै महा हियो।
बारी मति, हारी गति, कहाँ जाहि, नाँहि ठौर,
मारतु परेखौ देखौ, हितू ह्वै कहा कियो ॥६२॥

है। आपौ—अपना पन भी ॥४८॥ बीथिन—गलियां। इते हूयै—इतने पर भी तुम को देखने पर भी। जान—हे सुजान। तचनि ··तई घोर गर्मी से संतप्त हूँ। मीचौ - मृत्यु भी। निदरि करै गई—निरादर करके छोड़ गई। लखैं अनलखैं—देखने पर भी और विना देखे भी, दोनों दशाओं में। हारी—हैरान है ॥ ४६ ॥ मिलत न मैंहूँ भरे—किसी प्रकार (वे घाव) भरते नहीं। अमिलताई—तुम्हारे वियोग ने। छत—घाव। घनेरे—अत्यंत। बिसास—अविश्वास। प्यार में··देख्यो—ऐसा प्रेम में पक्का हमने सुना भी

महो अनमिलन मिलेई मिलौ जब मिलौ,
ऐसे अनमिल कै मिलाए हौ हमैं दई।
हमैं तौ मिलौ, जो कहूं आपहू सों मिले होहु,
मिलौ तो कहा जू ये मिलाप-रीति है नई॥
इते पै सुजान 'घन आनन्द' मिलौ न हाय,
कौन सी असिलता की लागी जिय में जई।
तुमहूँ तें अधिक अमिल मन हमैं मिल्यौ,
तऊ मिल्यौ चाहै दाहै जऊ जरियौ गई॥ ६३॥

जाहि जीव चाहै सो तहीं पै ताहि दाहैं,
वाहि ढूँढ़त ही मेरी गति मति गई खोय है।
करौं कित दौर और रहौं तौं लहौं न ठौर,
घर कों उजारि कैं बसत वन जोय है॥
बनी आनि ऐसी 'घन आनंद' अनैसी दसा,
जीवो जान प्यारे बिन जागें गयो सोय है।
जगत हँसत यों जियत मोहिं तातें नैन!
मेरौ दुख देखि रोवो, फिरि कौन रोय है॥ ६४॥

नहीं था (व्यंग से) सो आज देख लिया। पौन को प्रवेश--जहाँ अंतर इतना भी नहीं था। कि पवन का भी प्रवेश हो जाय॥ ५०॥ आन कानी--आरसी—टालमटूल रूपी दर्पण। मिहारिबौं ··कोलों—कब तक देखते रहोगे। कबतक सुनी अनसुनी करते रहोगे। मौनहूँ··· पालिहौ जु – कबतक चुप बने रहोगे। कूक भरी मूकता – बनावटी मौन (आपसे स्वयं बुलवा लेगी) टेक-अड़। मलोलिहै-पछतायेगा। बहराइबेकी-न सुनने की, बहिरा बनने की॥५१॥ जुन्हैयाहै-चाँदनी तमैं-अंधकार में। घरी-घड़ी, समय। भाग ऊघरी-भाग्यवान। हरी-प्रसन्न।५२।

छाया छिए लागति, सुजागति दृगनि आय,
तू सदा अलग जाकी छाहौं न दिखाती है।
रोम रोम रही भोय रोइ परौ साँस भरौं,
चौंकत चकत मुरझानि अधिकाति है॥
जानि प्यारी दूरि ही तें चेटक चरित कोटि,
मति उपचारनि की हेरत हिराति है।
तेरी गति चौगुनी कै सौगुनी चुरैल हूँ सों,
लगी अलगी सीं कछु बरनी न जाति है॥ ६५॥

गति, सु निहारी देखि, थकनि में चली जाति,
थिर चर दसा कैसी ढकी उघरति है।
कल न परति कहूँ कल जो परति होइ,
परनि परी हौं जानि जानि परी न परति है॥
हाय यह पीर प्यारे! कौन सुनै कासों कहौं,
सहौं 'घन आनन्द' क्यों अंतर अरति है।
भूलनि चिन्हारि दोऊ है न हो हमारें तातें,
बिसरनि रावरी हमैं लैं बिसरति है॥ ६६॥

हिराने—खो गए। पिराने—दुखने लगे। पल—पलक। ताहि—बाट को। चपि चपि—दब दब कर। मिलन आस-मिलने की आशा॥५३॥ पावैं फल—वैसा ही फल पाते हैं। जान राय—ज्ञानियों में श्रेष्ठ। निर्गुन—(१) निर्गुण ब्रह्म, मुझे कहीं साकार रूप में नहीं मिला। (२) गुणहीन॥ ५४॥ चन्दहि··धरै - चन्द्रमा को चकोर चाहता है और चकोर को चन्द्रमा और चकोर चन्द्रमा की सी देह धारण कर लेता है (देखते देखते गोल हो जाता है) देखिबे कों—ऊपर से देखने भर को। भोगलात ग्वै—भोगों को छोड़कर (ग्वै—गोई—

मूरति सिंगार की उज्यारी छबि आछी भांति,
दीठि लालसा के लोयननि लै लै आंजिहौं।
रति-रसना-सवाद-पांवड़े पुनीत कारी,
पाय चूमि चूमि कै कपोलनि सों मांजिहौं ॥
जान प्यारे प्रान अंग अंग रुचि रंगनि मैं,
बारि सब अंगनि अनंग दुख भाजिहौं।
कब 'घन आनन्द' ढरौंहीं बानि देखै सुधा—
हेत-मन-घट दरकनि सुठिरांजिहौं ॥ ६७ ॥

कहौं जो संदेसो ताको बड़ोई अदेसो आहि,
तन-मन वारे की कहैब को सुनै सुकौन।
निधरक जान अलबेले निषरक ओर,
दुखिया कहैब कहा तहा की उचित हौ न ॥
पर-दुख-दल के दलन को प्रभंजन हौ,
ढरकौहैं देखि कै बिबस बकि परी मौन।
इत की भसम दसा लै दिखाय सकत जू,
लालन सुबास सों मिलायहू सकत पौन ॥ ६८ ॥

छिपाना) भूले ते चलत रहैं—जो अपने को भूल जाते हैं वही प्रेम मार्ग में चलते रहते हैं। ॥ ५५ ॥ सुजान के मुख के सामने साधारण चन्द्रमा की हीनता का वर्णन। सुधाधर—बदन—चन्द्रमा रूपी मुख। मित्र—(१) हितैषी (२) सूर्य। रैन···रस—रात दिन समान ही रहता है। केस···पगतु है—केश रूपी अन्धेरे से प्रेम करता है, और अच्छा चमकता है। घन आनन्द—(१) प्रिय (२) बादल। दिपै—(१) शोभा देता है (२) प्रकाश करता है। खगतु है—मिलता है। नीठि डीठि परें—थोड़ा भी देखने

अंतर मैं रहति निरंतर जगी सुजान,
तहां तुम कैसें सोइबे को घर कै रहे।
गुपत लपट जाकी तन ही प्रगट करै,
जतननि बाढ़ै, गुरु लोग अरि कै रहे॥
सीरी परि जात रोम रोम 'घन आनन्द' हो,
और याके कोटिक बिकार भरि कै रहे।
बारिद-सहाय सों दवागिनि दवति देखो,
बिरह-दवागिनि तें नैना झरि कै रहे॥ ६९॥

सुरति करौ तो बिसरे जो होहि जान प्यारे,
वे तो चित चढ़े रंग-मूरति महा रहैं।
सुधि करैं वेई सुधिहू की ऐसी भूलि जाइ,
बेसुधि किए से सुधि माँझ या प्रकार हैं॥
गूढ़ गति ब्यौरिबे की भूलियो सुरति मोहिं,
रात द्योस छाए 'घनआनन्द' घटा रहैं।
सुधि कबहूँ न आवै भूलेऊ तनक नाहिं,
सुधि तिनही मैं तेई सुधि में सदा रहैं॥७०॥

पर ॥५६॥ उघरि—सबके सामने। लोक···बचे हैं—लोक-लज्जा के पास नहीं जाते, लज्जा त्याग दी है। चोपनि—चाव। अनबोले पै बके हैं—बोल नहीं सकते, पर बिना बोले ही अपनी दशा का परिचय देते हैं। चौतैं···रे—हृदय में उत्साह ही की इच्छा रखते हैं। लोचैं—चाहते हैं। अखरानि आवरे—घबड़ाहट और उतावली से भरे हैं ॥५७॥ भाग—भरी=भाग्यवाली। पुन्य···झरी=पुन्यवाली। अमी-ऐन—आनन=अमृत के घर मुख का। उर—मंडन=हृदय पर शोभित होने वाले, प्रिय। मनोज=कामदेव ॥५८॥ सोये=सोते

सदा कृपानिधान हौ, कहा कहौं सुजान हौ,
अमानि दानि-मान हौ, समान काहि दीजिए।
रसाल सिंधु प्रीति के भरे, खरे प्रतीति के,
निकेत नीति रीति के, सुदृष्टि देखि जीजिये ॥
टगीलगी तिहारियै, सु आप त्यौं निहारियै,
समीप ह्वै बिहारियै, उमंग-रंग भीजिये।
पयोद-मोद छाइये, बिनोद को बढ़ाइए,
बिलंब छाँड़ि आइए किधौं बुलाय लीजिये ॥७१॥

जीवहि जिवाय नीके जानत सुजान प्यारे !
याही गुन नामहि जथारथ करत हौ।
चिरजीजै दीजै सुख कीजै मन भायो मेरो,
मेरी अभिलाखन की निधि को धरत हौ ॥
चाह-बेली सफल करन 'घन आनन्द' यों,
रस दै दै उर-आलबालहि भरत हौ।
प्यारे सौंछकौहीं ढरकौंहीं मृदुबानि बस,
बिबस ह्वै आपही तै मोपर ढरत हौ ॥७२॥

रहे, भाग्य नहीं चेते। बहुतेरो=बहुत। निवेरौ=दूर करो। रसोत—एक औषधि जो आँख को लाभ करती है, रसमय। खगोगे—मिलोगे। पलौ—पल्लवित हो, बढ़ो। कलमलौ—बेचैन होते हो। दगोगे—जलोगे ॥५९॥ तुम···याने— जैसे तुमने मुझसे पीठ दी वैसे ही यह मेरे सामने, आगया है; तुम्हारे प्रतिकूल होते ही यह अनुकूल हो गया है। पैंड़े परे—पीछे पड़ गया है। हातो—अलग। मो···आन कों—मुझे छोड़कर किसी को नहीं जानता। रदौं—तब समझूं ॥ ६० ॥ परवारि—धोकर। छिन—छण भर। प्राननि लै—प्राणों से लगाकर,

रसिक रसीले हौ छबीले गुन-गरबीले,
रंगनि ढरीले हौ छकीले मद मोह तें।
जीवन-बरस 'घन आनन्द' दरस आछौ,
सरस परस सुख सींच्यो हंसि जोह तें॥
अचिरज निधि! हौं तिहारी सब बिधि प्यारे!
कृपा होति फलति ललित लता छोह तें।
मिलन तै ज्योंहीं बिछुरन डारयो, वारी
त्योंही किन कीजै हा हा मिलन बिछोह तें॥७३॥

मेरो मन चाहै 'घन आनन्द' सुजान कों पै,
ढकी लाग आग की लपेटै जीवही सहै।
वे तो गौं गवेले, हौं गहाऊं सो गहैं न गैल,
रहैं छैल भए नए, लेस ताहू को न है॥
पातनि तकत मूल भूले, फिरैं फूले व्रथा,
आली! बनमाली जू के फल ही कहा कहै।
आवरी ह्वै बावरी तू तावरी परति काहे,
तैं ह्वाँ घर बसे ह्याँ उजारि बसि को रहै॥७४॥

हृदय से लगाकर। मनसा अभिलाषा अतील—अतिथ॥ ६१॥ चितौनि में—देखने में ही। चिन्हारी—पहचान। चाह=प्रेम। सरस—बढ़कर। छन्द=छल। छलनि—छल पूर्वक। उघरे...अन्त-हे विश्वास घाती अन्त में चले गए। हितू—प्रिय॥६२॥ अनमिलन-अन्तर, कपट। अनमिलकै न मिलने वाला करके। आप हूँसीं मिले होहु—निष्कपट हों। जईं=अंकुर। ज ऊ—यद्यपि। जरियौ गई—जल भी गई॥६३॥ जाहि—जिसको। दाहै=जलाता है। रहौं—यदि कहीं न दौड़ूं। ठौर—स्थान। जीय—वह जिसको मैं चाहती हूँ।

उघरि ढुरे हौ नीके, मिलत बुरे हौ, गाढ़े,
रंगनि ग्रुरे हौ 'घन आनन्द' सुजान जू !
उर बैठि दाहत हौ, चाहनि मैं चाहत हौ,
घात ही निबाहत हौ प्राननि के प्रान जू ॥
हंसि हंसि खावत हौ, छाहौं नहीं छ्वावत हौ,
जागि जागि स्वावत हौ आपै हू तें आन जू ।
सूझत हौ, बूझत हौ, चाहत हौ, भाषत हौ,
रहत हौ, राखत हौ, मौन हौ, बखान जू ॥७५॥

वेई कुंज-पुंज जिन तरें तन बाढ़तु हौ,
तिन छाँह आए अब गहन सो गहिगो ।
सरित सुजान-चैन-बीचिन सों सींचो जिन,
वही यमुना पैं हेली वह पानी बहिगो ॥
वहै सुख-श्रम-स्वेद समै को सहाय पौन,
नाहिं छियै देह दैया महा दुख दहिगो ।
वेई 'घनआनन्द' जू जीवन को देते तिनही,
को नाम मारिनि के मारिबे को रहिगो ॥७६॥

जीवो—जीवन, जीवित रहना । जागे गयौ सोत है—जागते पर भी सो गया है, बिना जीव के जीवन चल रहा है । यों जियत=इस प्रकार अपना जीवन बिताते देखकर । फिर—मरने के बाद ॥६४॥ सुजान के रूप सौन्दर्य के प्रभाव को चुड़ैल के प्रभाव से भी अधिक बताया है । छिए—छूने पर (चुड़ैल छाया के छूने पर लगती है) । तू सदा अलग—तेरी छाया भी नहीं दीखती (ध्यान से ही तू कष्ट देती है) । रोम रोम—चुड़ैल आँखों में ही जगती है और तू रोम रोम, में । उपचारनि—उपायों की । हिराति है—खो जाती है । ओझा और

इते अनदेखे देखिबेई जोग दसा भई,
तेतो अनाकानी ही सों बांध्यो डीठ-तार है।
जान 'घनआनन्द' बिनाई सु बनक हेरें,
धीरज हिरात, सोच सूखत बिचार है॥
छीन अति दीनन को मोहन असोही रच्यो,
महा निरदई हमैं मिल्यौ करतार है।
तेरे बहरावनि रुई है कान बीच, हाय,
बिरही बिचारिनि की मौन में पुकार है॥७७॥

बासर बसंत के अनंत ह्वै कै अंत लेत,
ऐसे दिन पारै जु निहारै जिय राति है।
लतनि की फूलनि तमालनि की भूलनि कौ
हेरि हेरि नई नई भांति पियराति है॥
प्यारे 'घन आनन्द' सुजान सुनौ बाल दसा,
चंदन पवन तें पजरि सियराति है।
औसर सम्हारो न तौ अनआइबे के संग,
दूरि देस जाइबे कों प्यारी नियराति है॥७८॥

सयाने तेरा कुछ भी उपचार नहीं कर पाते॥ ६५॥ निहारी देखि—मैंने भली भाँति ध्यानपूर्वक देख लिया। गति थकनि में चली जाति-गति थक गई है। उघरति है—मेरी दशा कैसी है स्थिर है अथवा चञ्चल है, यह सब पता नहीं चलता, यह सब ढका हुआ ही दिखाई दे रहा है। कल—चैन। परनि—दशा। अरति है=(यह पीड़ा हृदय में) अड़ जाती है। भूलनि चिन्हारि – आपको भूलना अथवा आपको भली भाँति पहचानना। बिसरनि आपके द्वारा हमारी विस्मृति। बिसरति है—हमें अपनी सुधबुध नहीं रहती॥६६॥ दीठि··जोयनि —

कौन कौन अंगनि के रंगनि मैं रांचै मन,
मोहन हो सोई सुख, दुख पुनि ल्यावई ।
मौन माहिं बात है समुझि कहि जानै जान,
अमी काहू भांति को अचंभै भरि प्यावई ॥
सोवनि जगनि याकी मूरछा सचेत सदा,
रीझि 'घन आनन्द' निबेरै याहि न्यावई ।
कहै कोऽब मानै पहिचानै कान नैन जाके,
बात की भिदनि मोहि मारि मारि ज्यावई ॥ ७९ ॥

सुधि करे भूल की सुरति जब आय जाय,
तब सब सुधि भूलि कूकौं गहि मौन कों ।
जातें सुधि भूलै सो कृपा ते पाइयत प्यारे,
फूलि फूलि भूलौं या भरोसे सुधि हौन कों ॥
मेरी सुधि भूलहि बिचारिए सुरति नाथ !
चातक उमाहै 'घन आनन्द' अचौन कों ।
ऐसी भूलहू सों सुधि रावरी न भूलै क्यों हूँ,
तोहि जो बिसारौं तो सम्हारौं फिरि कौन कों ॥८०॥

लालसा की दृष्टि से भरे हुए नेत्रों में । बोरि—डुबोकर । भाँजि हौं—चूर्ण कर दूँगी (दुख) कब··रांजिहौं= आपको अपने ऊपर अनुकूलता देखकर, कब आपकी कृपा दृष्टि से अपने प्रेम रूपी अमृत से भरे हुए मन रूपी घट की दरारों को भली भाँति राँजूंगी ॥७८॥ अँदेसो—आशङ्का । तन-मन वारे की—शरीर और मन निछावर करने की बात । जान—सुजान । ओर—प्रति, से । प्रभञ्जन—पवन (नष्ट करने वाले)। ढरकौहैं - अनुकूल । बिबस—विवश हो कर । भसमदसा—मैं धूल में (मिट्टी में) मिल

मोर—चन्द्रिका सी सब देखन को धरे रहैं,
सूछम अगाध रूप—साध उर आनहीं।
जाहि सूझ तिन हू सो देख भूली ऐसी दसा,
ताहि ते बिचारे जड़ कैसे पहिचानहीं॥
जान प्रान प्यारे के बिलोकें अवलोकिबे कों,
हरष विषाद स्वाद बाद अनुमानहीं।
चाह मीठी पीर जिन्हें उठति 'आनन्द घन,,
तेई आँखैं साखैं और पाखैं कहा जानहीं॥ ८१॥

भूलनि करी है सुधि जान ह्वै अजान भये,
खुलि मिले कपट सों निपट रसाल हौ।
त्यागहि आदर दीन्यो मन सनमान कीन्यौ,
अनुचित चित धारि उचित लहा लहौ।
जहां जब जैसे तहीं तैसे नीके रहौ अब,
सब विधि प्रान प्यारे! हित-आल-बाल हौ।
मन तुम मोह्यो ताहि नैकु राखे रहिए जू,
एहौ 'घन आनन्द' जू गरें गुन माल हौ॥ ८२॥

गई हूँ, धूल उड़ाकर तुम यह बात प्रकट कर सकते हो। लालन··पौन—प्रिय की सुगन्ध उधर से ला सकते हो ॥६८॥ अन्तर—हृदय जगी—प्रज्वलित। गुरु··कै रहे—गुरु—जन इसे शान्त करने की चेष्टा में लगे हुए हैं और हठ कर रहे हैं। सीरी—शीतल, ठण्डी। वारिद—बादल। दवागिन—दावाग्नि, बन की आग ॥६९॥ सुरति-स्मृति, याद। सुधि करैं—उनकी याद करने पर।ब्यौरिबे—वर्णन करने की॥ ७०॥ अमानि—अभिमान हीन। दानि—मान=दानियों में श्रेष्ठ। समान—समता। टगी—टकटकी। पयोद—मोद—

उठे बड़े भोर चैन—चोर लाह—साह, दोऊ,
मति गति ठगे न सकत चलि गेह कों।
छाई पियराई और बिथा हियराई जानै,
जके थके बैन, नैन निदरद मेह कों॥
दुसह दसाहि देखैं समय बिसमय होत,
खग मृग द्रुम बेली बिसरत देह कों।
जान 'घन आनन्द' अनोखो अनियारो नेह,
दुहू दिसि बिषम रच्यो बिरंचि चेह* कों॥ ८३॥

आरसी उसास ज्यों, तुसार तामरस त्योंही,
आतप के ताप रङ्ग ढङ्ग नवनीत कौ।
पावक तें पारौ, कांजी छिए हूँ बिचारो छीर,
बारुनी तैं सुचि, जैसे लेखौ कफ गीत कौ॥
ऐसे 'घन आनन्द' विचार बारपार नाहिं,
जानै एक जीव जान प्रीतम पुनीत कौ।
सूछम महा है ताकी तौल को कहा है,
राखि जानिबो लहा है यों दुहेलो मन मीत कौ॥८४॥

आनन्द का बादल (घनानन्द) ॥७१॥ चिरजीजे—दीर्घायुहो। चाह बेली—अभिलाषा की बेल। उरआलबालहि—हृदय रूपी आँवले को। प्यारे सौं—हे प्यारे तुम्हारी सौगन्ध है। छकौंहों - छकने वाली; ढरकौंहीं—कृपा करने वाला, मृदु—कोमल। विवस ह्वै—अपने स्वभाव से विवश हो कर, कुछ मेरे गुणों को देखकर नहीं॥ ७२॥ छकीले-मस्त, चूर। जीवन-जल, प्राण। अचिरननिधि-हे आश्चर्य भण्डार॥ ७३॥ ढकी लाग-भीतरी प्रेम। गौं गवेले - अपनी घात में रहने वाले। हौं··· गैल - जिस रास्ते पर मैं चलाना चाहती हूँ, उस

रति—रङ्ग—राते, प्रीति-पागे रैन—जागे नैन,
आवत लगेई घूमि झूमि छबि सों छके।
सहज बिलोल परे केलि की कलोलनि मैं,
कबहूँ उमगि रहे कबहूँ जके थके॥
नीकी पलकनि पीक—लीक—झलकनि सोहै,
रस—बलकनि उनमद न कहूँ सके।
सुखद सुजान 'घन आनन्द' पोषत प्रान,
अचरजि खान उघरेहूँ लाज सों ढके॥८५॥

केलि की कलानिधान सुन्दरि सुजान महा,
आनन समान छबि छाँह पै छिपैयैसोनि ?
माधुरी मुदित मुख उदित सुसील भाल
चंचल बिसाल नैन लाज भीजियै चितौनि॥
पिय अंग संग 'घन आनन्द' उमंग हिय,
सुरति तरंग रस बिबस उर मिलौनि।
झूलनि अलक, आधी खुलनि पलक, स्रम-
स्वेदहि झलक भरि ललक सिथिल हौनि॥८६॥

पर नहीं चलते। आवरी बावरी - घबड़ाई हुई पागल सी। तावरी - ताप से मूर्च्छित सी। घर बसे-स्त्रियों की गाली उपपति के लिए। ह्यां- यहाँ।७४। उघरि-एक बार प्रगट हो कर। दुरेहौ-छिपगए हो। मिलत बुरे हो-भली भांति नहीं मिलते। चाहनि···हौं-ऊपर से देखने में प्रेम से करते जान पड़ते हो। आपै···आन जू-तुम अपने से भी पराये हो, कपटी हो॥७५॥ तन बाढ़त हो-शरीर प्रफुल्लित रहता था (संभोग के समय)। अब-वियोग में। गहन सौ गहिगौ-ग्रहण सा लग गया। पौन-पवन। छिपै-छूता है। भारिनि-मरे हूओं को॥७६॥ इते-

आई है दिवारी चीते काजनि जिवारी प्यारी,
खेलैं मिलि जूवा पैज पूरे दाव पावहीं।
हारहि उतारि जीतें मीत धन पल छिन,
चोप चढ़ैं बैन चैन चुहल मचावहीं॥
रंग सरसावैं बरसावैं 'घन आनन्द'
उमंग—ओपे अंगनि अनंग दरसावहीं।
दियरा जगाय जागैं पिय पाय तिय रागैं,
हियरा लगाय हम जोगहि जगावहीं॥ ८७॥

बैस की निकाइ सोई रितु सुखदाई तामें,
तरूनाई उलहत मदन मैमंत है।
अंग अंग रंग भरे दल, फल, फूल राजैं,
सौरभ सरस मधुराई को न अंत है॥
मोहन—मधुप क्यों न लटू ह्वै सुभाय भटू,
प्रीति को तिलक भाल धरे भागवंत है।
सोभित सुजान 'घन आनन्द' सुहाग-सींच्यो,
तेरे तन—बन सदा बसत बसंत है॥ ८८॥

इधर, हमारी। अनदेखे-प्रिय को बिना देखे। आनाकानी···बहरा बनि-बहरा बनने के लिए। मौन में पुकार है-चुपचाप कष्ट सहरहे हैं। अंत-प्राख। इस अवसर पर ध्यान दीजिए। ॥७८॥ राँचै-अनुरक्त हो, रंगे, रमे। मन मोहन-(१) मन को मोहने वाले (२) मन में मोह न रखने वाले। समुझि...जान-उसे सुजान ही—अन्यत्र कह और समझ सकते हैं। मूरछा सचेत सदा-सदैव ॥७६॥ भूल की-आपकी भूलों की (स्मृति) कूकौ···मौन कों-बिलकुल शाँत हो जाती हूँ। अचौन। आचमन—करने को, पीने कों।

पल-दल-संपुट मैं मुंदै मन मोद मानै,
आरस-विभावरी ह्वै होत भौंरहाई है।
द्वै सरोज बीच एक बसत रसत कैसे,
लसत सु ऐसे अचिरज अधिकाई है।
बाहिर तें रूप मकरंद पान करै पुन्य,
बड़ी भूतागति हेरे मो मति हिराई है।
नयोई रसिक 'घन आनन्द' सुजान यह,
किधों प्यारी तेरे नैन-सैन की निकाई है ॥८९॥

उर-गति ब्योरिबे कों सुंदर सुजान जू को,
लाख लाख बिधि सों मिलन अभिलाषियै।
बातैं रिस-रस भीनी कसि गसि गांस झीनी,
बीनि बीनि आछी भांति पांति रचि राखियै।
भाग जागै जो कहूँ बिलोकैं 'घन आनन्द' तौ,
ता छिन के छाकनि के लोचन ही साखियै।
भूली सुधि सातौ, दसा बिबस गिरत गातौ,
रीझि बावरे ह्वै तब औरै कछु भाखियै ॥९०॥

ऐसी ··भूलहू सौं-आपकी इस भूल से भी ॥८२॥ मोर चन्द्रिका-मोर पंख के ऊपर बनी हुई बनावटी आँख। माहि सूझ-जिन आँखों को वास्तविक प्रेम और परखने की दृष्टि मिली हुई है। जड़-वे मोर पंख वाले दृष्टिहीन नेत्र। बाद-व्यर्थ ही अनुमान करते हैं; जड़ नेत्र प्रिय के मिलने और न मिलने के सुख दुख का अनुमान ही नहीं कर सकते। चाह-प्रेम! साखैं-सच्ची, वास्तविक ॥८१॥ रसाल-रसिक। त्य.गहि···दीन्यो - आपने त्याग को ही अपनाया है। सनमान-सत्कार हित - आलवाल - प्रेम रूपी वृक्ष के थाँवले हो। गरें···हौ - आप

रूप - गुन - मद - उनमद नेह-तेह भरे,
छल-बल-आतुरी चटक-चातुरी पढ़े ।
घूमत घुरत अरबीले न मुरत क्यों हूँ;
प्रानन सों खेलैं अलबेले लाड़ के बढ़े ॥
मीन - कंज - खंजन - कुरंग मान भंग करैं,
सींचे 'घन आनन्द, खुले सकोच सों मढ़े ।
पैने नैन तेरे से न हेरे मैं अनेरे कहूँ,
घाती बढ़े काती लिए छाती पै रहैं चढ़े ॥९१॥

ललित उमंग-बेली आलबाल अन्तर तें,
'आनन्द' के 'घन' सींची रोम रोम ह्वै चढ़ी ।
आगम-उमाह-चाह छायो सु उछाह रंग,
अंग अंग फूलनि दुकूलनि परै कढ़ीं ॥
बोलत बधाई दौरि दौरि कै छबीले दृग,
दसा सुभ सगुनौती नीके इन पै पढ़ी ।
कंचुकी तरकि, मिले सरकि उरज, भुज,
फरकि सुजान चौंप-चुहल महा बढ़ी ॥९२॥

मेरे गले में गुण - माला की भाँति हौ । मेरे लिए आप सब गुणों की खानि हौ ॥ ८२ ॥ चैन चोर=चैन को चुराने वाले । लाह - साह= लाभ को प्राप्त करने वाले । नैन मेहकों—आँखों से वर्षा की सी झड़ी लगी है । दुसह - कठिन, असहनीय । बिसमय - अत्यन्त दुःख दायी समय । चेह प्रेम ॥ ८३ ॥ आरसी उसास ज्यों—जिस प्रकार (सांस) मुँह की भाप लगने से दर्पण (बिगड़ जाता है) तुसार— तुषार, पाला । तामरस—कमल । आतप-गर्मी । नवनीत=मक्खन । छीर—क्षीर, दूध । सुचि—पवित्रता । बारपार - अन्त । दुहेलो—

रूप की उझलि आछे आनन पै नई नई,
तैसी तरुनई तेह-ओपी अरुनई है।
उलहि अनंग- ग की तरंग अंग-अंग,
भूषन बसन भरि आभा कल गई है॥
महा रस भीर परैं लोचन अधीर तरैं,
ओछी ओक धरैं प्यास पीर सरसई है।
कैसे 'घन आनन्द' सुजान प्यारी छबि कहौं,
डीठ तो चकित औ थकित मति भई है॥९३॥

नीकी नासा-पुटही की उचनि अचम्भे-भरी,
मुरि कै इचनि सों न क्यों हूँ मन ते मुरै।
रूप - लाड़ जोबन - गरूर चोप - चटक सों,
अनखि अनोखी तान गावै लै मिहीं सुरै॥
सहज हंसौहीं छबि फबति रँगीले मुख,
दसननि जोति-जाल मोती माल सी रुरै।
सरस सुजान 'घन आनन्द' भिजावैं प्रान,
गरबीली ग्रीवा जब आन मान पै ढुरै॥९४॥

कठिन, दुस्साध्य, थोड़े सी ही असावधानी से बिगड़ जाने वाला ॥८४॥ राते—लाल। झूमि—झूमते हुए। बिलोल परे—चंचल हैं। उनमद-उन्माद से भरे हुए। न कहूँ सके—कहीं भी सशंकित नहीं हुए ॥८५॥ समान=मान सहित। सौनि—सौने की कान्ति। चितौन - चितवन। अलक - बालों की लट ॥ ८६ ॥ चीते का जनि जिवारी—अभिलाषित कार्यों को सफल करने वाली। पैज - शर्त लगाकर। दाव पावहीं - दाव जीतते हैं। मीत - धन - मित्रों का धन। पल - छिन - प्रत्येक क्षण और पल। ओपे - प्रकाशित। दियरा - दीपक ॥८७॥ बैस-उम्र।

मैं मुंह लगाई तातें मोंहि मौन ही की कथा,
रसना के उर एक रस रही वसि है।
तेरी सौंह जान! सोई जाने जिनि जोही छबि,
क्यों धों इन नैननि तें नीद गई नसि है॥
छोरि छोरि धरे जे जे भूषन बिदूषन से,
तहीं तहाँ लगि लोभी मन गयौ गसि है।
आरस रसीली 'घन आनन्द' सुजान प्यारी,
ढीली दसा ही सों मेरी मति लीनी कसि है॥९५॥

चल-दल-पात की प्रभा को है निपात जातें,
यातें बाय-बावरो डराय कांपिबो करै॥
थोरी थिर गुन में बिराजै चिर आभा ऐन,
नैन हेरैं हेरनि हिए में भूष लै भरै॥
नैको सनमुख भए दीजै सब तन पीठ,
नीठि हाथ लागै मन पाय न कहूँ परै।
ताकें तौ उदर 'घन आनन्द सुजान प्यारी!
ओछी उपमानि को गरूर ओरे लौं गरै॥९६॥

निकाई - सुन्दरता। रितु - सुखदाई - वसन्त ऋतु। मैमन्त - मतवाला। दल - पत्ते। लट्टू - लट्टू। तिलक - वसन्त में प्रफुल्लित होने वाला एक वृक्ष, टीका॥ ८८॥ पल - दल - पलक रूपी पत्ते। मुदै...मानै- (पलक रूपी पत्तों में) बन्द होने में (मेरा मन) आनन्द मानता है। आरस...विभावरी - आलस्य रूपी रात के कारण। ह्वै - होजाने से। भौंर--मनरूपी भ्रमर। हाई - हत, दीन। पुण्य - पवित्र मकरन्द का विशेषण। भूतागति - भूत की सी दशा, आश्चर्यपूर्ण दशा। सैन - शयन के समय॥८९॥ भाग जागें - सौभाग्य। छाकनि - चूर हो

रूप-मतवारी 'घन आनन्द' सुजान प्यारी,
घूमर कटाछि धूम करै कौन पै घिरैं।
नाच की चटक लसै, अंगनि मटक-रंग,
लाडिली लटक संग लोइन लगे फिरैं॥
अभिनै निकाई निरखत ही बिकाई मति,
गति भूली डोलै सुधि सौधौ न लहौं हिरैं।
राते तरवानि तरे चूरे चोप चाड़ पूरे,
पांवड़े लौं प्रान रीभि कनावड़े ह्वै गिरैं॥९७॥

चोप-चाह चांचरि, चुहल चोख चटकीली,
अटक निवारैं, टारै कुलकानि कीचि कै।
घात लै अनूठो भरै चेटक चितौन-मूठी,
धूंधरि चिलक चौंध बीज कौंध सों टिकै॥
भीजे 'घन आनन्द' सुजान के खिलार दृग,
नैसिक निहारैं जिनकी निकाई पै बिकै।
रूप अलबेली सु नवेली एरी तेरी आँखें,
ताकि छाकि मारैं हुरिहाई न कहूँ छिकै॥९८॥

जाने। लोचनि ही साखि पै - वह आनन्द नेत्र ही जानते हैं, उसका वर्णन नहीं हो सकता। सातौ - पाँचों इन्द्रियाँ, मन तथा बुद्धि सब शिथिल हो गई। दसा···गातौ - विवशता के कारण शरीर भी गिरा जाता है। और···भाषियै - तब वे सोची हुई सभी बातें भूल जाती हूँ और कुछ और ही बात कहने लगती हूँ॥ ६०॥ उनमद - उन्माद। तेह - तेज। चमक। घुरत - चक्कर काटते हैं। अरबीले - हठीले। प्रानन सों खेलें - प्राणों तक की बाजी लगा देते हैं। खुले - खुले होने पर भी। अनेरे - अन्यायी। काती - छुरी॥ ६१॥ आगत

नेही की बिलोकनि बिलोइ सार सोधि लेइ,
रूपौ रिझवार जानि काढ़ै गुन दब के।
चाउ सिर चढ़तु बढ़तु अति लाड़िलो ह्वै,
कैसे गनै बनै जेब ओट पाय तब के॥
खेल अलबेले हियो खूंदैं 'घन आनन्द' यों,
जान प्यारे मतवारे भारे सुगरब के।
कहिबे को कोऊ किस देखो न परेखौ वे तो,
चाँदिनी के चेर मोर पच्छ अच्छ सब के॥९९॥

नेही महा ब्रजभाषा—प्रवीन,
औ सुन्दरतानि के भेद कौं जानै।
जोग—वियोग क्री रीत मैं कोविद,
भावना—भेद स्वरूप को ठानै॥
चाह के रंग में भीज्यौ हियो,
बिछुरें मिलें प्रीतम साँति न मानै।
भाषा—प्रवीन सुछंद सदा रहै,
सो घन जी के कबित्त बखानै॥ १००॥

पतिका नायिका - पति परदेश से लौटने वाले हैं—उमङ्ग - वेलि - उत्साह की बेलि। आलबाल - अन्तर - हृदय रूपी थाँवले से। आगम - उमाह - चाह - प्रिय के आने का उत्साह और चाव। दुकूलनि - वस्त्रों से। सगुनौती - शुभ काम की प्रिय। कंचुकी-चोली। चोंप - चुहल - चाव का बड़ा आनन्दोत्सव (हुआ)॥ ९२॥ उझलि - ज्योति, चमक। तेह - ओपी - तेज से प्रकाशित। उलहि - उत्पन्न होकर। छैल - सुन्दर। तरैं - (रस की भीर में नेत्र होकर) उतराते हैं, डूब नहीं पाते, इतने बेचैन हैं। ओक-अंजुली। ओछी -

प्रेम सदा अति ऊँचौ लहै,
सु कहै इहि भांति की बात छकी।
सुनि के सब के मन लालच दौरै,
पैं बौरे लखैं सब बुद्धि चकी॥
जग की कविताई के धोखे रहैं,
ह्यां प्रवीननि की मति जाति जकी।
समुझै कविता घनआनन्द की,
हिय—आंखिन नेह की पीर तकी॥ १०१॥

झलकै अति सुन्दर आनन गौर,
छके दृग राजत काननि छ्वै।
हँसि बोलनि में छवि फूलन की,
बरषा उर, ऊपर जाति है ह्वै॥
लट—लोल कपोल कलोल करैं,
कल—कंठ बनी जल जावली द्वै।
अंग तरंग उठे दुति की,
परि है मनौ रूप अबै धर च्वै॥ १०२॥

छोटी । सरसई - बढ़ी हुई है ॥ ९३ ॥ मान वर्णन - नासा पुट - (नाक के) नथुने । उचनि - ऊपर को उठना, फूलना मुरै - मुड़ती (नहीं), सामने से (नहीं) जाती । अनखि - बड़ा उदासीनता से, जैसे मानों स्वान्तः सुखाय हों (गारही हो) । मिही - पतले । मुरै स्वर में फबति - शोभा देती हैं । ढरै - डोलती है । ढुरै - (नाहीं करने के लिए) हिलती है ॥९४॥ एक रस - निरन्तर बिना किसी परिवर्त्तन के । जोही - देखी । नसि-नष्ट । विदूषन - दोष, कुरूप करने वाले । गसि गयौ है - फँस गया है । ढीली दसा - आलस से भरी हुई ॥९५॥

भोर ते सांझ लौं कानन ओर,
निहारति बावरी नैकु न हारति।
सांझ ते भोर लौं तारनि ताकिबो,
तारन से एक तार न टारति॥
जौ कहूँ भावतौ दीठ परै,
घन आनन्द आंसुन औसर गारति।
मोहन सोहन जोहन की,
लगिये रहै आंखिन के उर आरति॥ १०३॥
होन भये जल मीन अधीन,
कहा कछु मो अकुलानि समाने।
नीर—सनेही कों लाय कलंक,
निरास ह्वै कायर त्यागत प्रानै॥
प्रीति की रीति सु क्यों समझै, जड़,
मीत के पानै परै को प्रमानै।
या मन की जु दसा घनआनद,
जीव की जीवनि जान ही जानै॥ १०४॥

उदर का वर्णन - चल दल - पात पीपल का पत्ता। निपात - नष्ट होना। वाय वावरौ - वात रोग से पागल होकर, हवा के कारण (वाय शब्द श्लिष्ट है)। गुन - गुण, त्रिबली। दीजै···पीठि - सब ओर से दृष्टि हट जाती है। ताकें तो उदर पेट के देखने से। ओरे लौं-ओले की भाँति॥ ९६॥ घूमर - चक्करदार। धूम करैं - धूम मचाए हुए हैं। लोयन - नेत्र। अभिनै - अभिनय, नाट्य। निकाई - सुन्दरता। पाँवड़े लौं - प्राण पाँवड़े की भाँति (नाच के समय) सुजान के पैरों के नीचे बिछ जाते हैं॥ ९७॥ चोप - चाह चाचरि - बड़ी

मीत सुजान अनीत करौ जिन,
हा हा न हूजिये मोहि अमोही।
दीठि कों और कहूँ नहीं ठौर,
फिरी दृग रावरे रूप की दोही॥
एक बिसास की टेक गहें,
लगि आस रहे बस प्रान—बटोही।
हौ 'घन आनँद जीवन मूल,
दई कित प्यासनि मारत मोही ॥ १०५ ॥

पहिलें 'घन आनन्द' सींचि सुजान,
कही बतियाँ अति प्यार-पगी।
अब लाय बियोग की लाय बलाय,
बढ़ाय बिसास दगानि दगी॥
अँखियाँ दुखयानि कुबानि परी,
न कहूँ लगैं कौन घरी सु लगी।
मति दौर थकी, न लहै ठिक ठौर,
अमोही के मोह मिठास ठगी ॥१०६॥

भरी उमङ्ग ही होली का चाँचरि राग है। अटक - बाधा। कुल - कानि की चिकै - कुलकी मर्यादा को कीचड़ के समान (फेक देते हैं)। चेटक···मूठी - जादू भरी चितवन की मूठी में। धूँ घरि···कौंध - बिजली की सी चमक ही धूँ धरि है। नैसिक थोड़ा सा भी। न कहूँ जिकैं - किसी की पकड़ में नहीं आतीं ॥ ६८ ॥ नेही -प्रेमी। विलोइ - मथकर। सार - तत्व, घृत। रूपो - रूप भी। जे ब - वे अब। ओट पाय - उपद्रव। खेल - सुजान प्यारे की क्रीड़ाएं ॥ ६६ ॥ सुन्दरतानि = काव्य तथा रूप आदि की सुन्दरता (के भेद को जानने

क्यों हँसि हेरि हरयो हियरा,
अरु क्यों हित कै चित चाह वढ़ाई।
काहे कों वोलि सुधासने वैननि,
चैननि मैननि-सैन चढ़ाई॥
सो सुधि मो हिय में 'घन आनन्द'
सालति केहूँ कढ़ै न कढ़ाई।
मीत सुजान अनीति की पाटी,
इतै पै न जानिए कौन पढ़ाई॥१०७॥

तब तौ छबि पीवत जीवत है,
अब सोचनि लोचनि जात जरे।
हित-पोष के तोषसु जे प्रान पले,
बिललात सु यौं दुख दोष भरे॥
'घन आनन्द' मीत सुजान बिना,
सब ही सुख-साज-समाज टरे।
तब हार पहार से लागत है,
अब आनि कै बीच पहार परे॥१०८॥

वाला)। सान्ति=शान्ति। सुछन्द=स्वतन्त्र॥१००॥ छकी=प्रेम से भरी हुई। चकी=चकित (बुद्धि से)। जकी=घबड़ा जाती है। तकी=देखी॥१०१॥ छके—मस्त। कानन छ्वै—कानों को छूते हुए, कानन-चारी, बड़े बड़े। जलजावली—मोतियों को माला। धर—पृथ्वी पर। परिहै चै—चू पड़ेगा॥१०२॥ कानन-वन। न हारति-थकती नहीं। आँसुन...गारति-प्रेमाश्रुओं के कारण वह उत्तम अवसर भी नष्ट कर देती है, निकाल देती हैं। सौंहन-सामने। आरति-प्रवल उत्कंठा॥१०३॥ हीन जल-जल से अलग होने पर। पारैं-

पहिले अपनाय सुजान सनेह सों,
क्यों फिर नेह को तोरिए जू।
निरधार अधार दै धार-मंझार,
दई गहि बांह न बोरिए जू॥
'घन आनन्द' आपने चातक कों,
गुन बांधि लै मोह न छोरिए जू।
रस प्याय कैं ज्याय, बढ़ाय कैं आस,
बिसास मैं यों विष घोरिए जू॥१०९॥

रावरे रूप की रीति अनूप,
नयो नयो लागत ज्यों ज्यों निहारियै।
त्यों इन आँखिनि बानि अनोखी,
अघानि कहूं नहीं आन तिहारियै॥
एक ही जीव हुतौ सुतौ वार्‌यो,
सुजान सकोच औ सोच सहारियै।
रोकौ रहै न, दहै 'घनआनन्द',
बावरी रीझ के हाथनि हारियै॥११०॥

हाथ में। जान सुजान॥१०४॥ जिन - मत। मोहि - मोहित करके। अमोही - निर्मोही, निष्ठुर। टेक - सहारा। प्रान-बटोहीं - प्राण रूपी पथिक। जीवन - प्राण, जल॥१०५॥ लाय - लगाकर। लाय - अग्नि। बलाय - अत्यधिक अथवा विपत्ति। बिसास - अविश्वास। दगानि - धोखों से। दगी - जलायी। न कहूँ लगैं - इनको कैसे भी नींद नहीं आती। ठिक ठौर - ठीक ठिकाना, उचित स्थान॥१०६॥ मैननि-सैन - कामदेव की सेना। सालति – कष्ट देती है। कढ़ै.. कढ़ाई - निकाले निकलती नहीं। अनीति - अन्याय। इतपै - इतने पर भी;

'घन आनन्द' जीवन—मूल सुजान की,
कौंधन हूँ न कहूँ दरसैं।
सु न जानिये धौं किधौं छाय रहे,
दृग—चातिक—प्रान तपै तरसैं॥
बिन पावस तो इन्हें थ्यावस हो,
न सु क्यों करि ये अब सो परसैं।
बदरा बरसैं ऋतु मैं घिरिकै,
नित ही अँखियाँ उघरी बरसैं॥ १११ ॥

अंतर आँच उसास तचै, अति,
अंग उसीजै उदेग की आवस।
ज्यौं कहलाय मसूसनि ऊमस,
क्यों हूँ कहूँ सु धरे नहिं थ्यावस॥
नैंन उघारि दियें बरसै,
'घनआनन्द' छाई अनोखिये पावस।
जीवनि—मूरति जान को आनन,
है बिन हेरैं सदाई अमावस॥ ११२ ॥

मेरी इस दशा को देख कर भी ॥१०७॥ तब - संयोग के समय। छबि-पीवत है - सौन्दर्य का रसास्वादन करते थे। हित…पले - प्रेम के पोषण से संतुष्ट हो कर जो प्राण पले हुए थे। बिललात - रोते हैं, दुखी होते हैं ॥१०८॥ निरधार…मंझार - निराधार को आधार देकर बीच धार में (न डुबोइए)। बिसांस…जू - आप विश्वास में इस प्रकार विष घोलते हैं, धोखा देते हैं॥१०९॥ नयो निहारिये - जितना ही ध्यान से देखा जाय, उतना ही अधिक सौन्दर्य उनमें दीख पड़ता है। अघानि - तृप्ति। हुतौ - था। वारयौ - निछावर कर दिया। सहा-

जान के रूप लुभाय कै नैननि,
बेचि करी अधबीच ही लौंड़ी।
फैलि गई घर बाहिर बात,
सु नीकें भई इन काज कनौड़ी॥
क्योंकरि थाह लहै 'घनआनन्द'
चाह—नदी तट ही अति औंड़ी।
हाय दई! न बिसासी सुनै कछु,
है जग बाजति नेह की ढौंड़ी॥ ११३॥

लै ही रहे हौ सदा मन और को,
दैबो न जानत जान दुलारे।
देख्यो न है सपनेहूँ कहूँ दुख,
त्यागे सकोच औ सोच सुखारे॥
कैसो संजोग बियोग धौं आहि,
फिरौ 'घनआनन्द' ह्वै मतवारे।
मो गति बूझि परै तबहीं,
जब होहु घरीक हूँ आप तें न्यारे॥ ११४॥

रिये - सँभालिए; दहै - जलाती है ॥११०॥ कौंधन - बिजली का चमकना, प्रेमी की झलक। छायरहे - कहां बसे हैं। दृग⋯प्रान - आँख रूपी पपीहों के प्राण। ध्यावस - धैर्य ॥१११॥ अन्तर - हृदय। आंच उसास - गरम श्वास की अग्नि से। उसीजै - उबलता है। आवस - उमस, गर्मी। कहलाय - घबड़ाता है। उघारि दियें - खुले रहकर [बादलों की भांति घिर कर (बन्द हो कर) नहीं]। पावस - वर्षा ॥११२॥ कनौड़ी - लज्जित। चाह-नदी - प्रेम रूपी नदी। औंड़ी - गहरी; प्रेम की नदी में घुसते ही गहरा गोता लगता

खोइ दई बुधि सोइ गई सुधि,
रोइ हँसै, उनमाद जग्यौ है।
मौन गहै चकि चाकि रहै,
चलि बात कहै तन दाह दग्यौ है॥
जानि परै नहिं जान! तुम्हैं लखि,
ताहि कहा कछु आहि खग्यौ है।
सोचनि ही पचिए 'घनआनन्द'
हेत पग्यौ किधौं प्रेत लग्यौ है॥ ११५॥

जीवन हौ, जिय की सब जानत,
जान! कहा कहि बात जतैये।
जो कछु है सुख—संपति सौज,
सु नैसिक की हँसि दैन में पैये॥
'आनन्द के घन'! लागै अचंभो,
पपीहा पुकार तें क्यों अरसैये।
प्रीति पगी अँखियानि दिखाय कै,
हाय अनीति सु दीठि छिपैये॥ ११६॥

है। डांड़ी - ढिंढोरा ॥११३॥ और को - अन्य लोगों का। आहि - है ॥११४॥ रोइहसै - रोकर हँस देती है। चकि चाकि रहै - भौ चक्की सी हो जाती है। चलि बात कहै - चली हुई (बेठिकाने की) बात कहती है। खग्यौ है - समा गया है। हेत - प्रेम ॥११५॥ जतैये - प्रकट करूं। सौज - सामान। अरसैये - आलस करते हो। दीठि छिपैये -मुह छिपाते हो ॥११६॥ वियोग में चन्द्रिका के दुःखदायी होने का वर्णनः— नेह ... सियराई—संयोगावस्था में यह चांदनी शीतलता से हृदय को सींचती थी। अंबर—आकाश। धर - पृथ्वी। झर—लौ; विपरीतिता

नेहनिधान सुजान समीप तौ,
सींचत ही हियरा सियराई।
सोई किधौं अब और भई दई,
हेरत ही मति जाति हिराई॥
है बिपरीति महा 'घनआनन्द',
अंबर तें धर को झर आई॥
जारति अग अनंग की आँचनि,
जोन्ह नहीं सु नई अँगलाई॥ ११७॥

कंत रमै उर-अंतर में,
सु लहै नहीं क्यों सुख रासि निरंतर।
दंत रहैं गहैं आंगुरी तें,
जु वियोग के तेह तचै परतंतर॥
जो दुख देखत हौं 'घनआनन्द',
रैन दिना बिन जान सुतंतर।
जानै वेई दिन राति बखाने तें
जाय परै दिन राति कौ अंतर॥ ११८॥

यह है साधारण अग्नि की लौ पृथ्वी से आकाश की ओर जाती है और यह चन्द्रिका की लौ उलटे आकाश से पृथ्वी को आ रही है। जोन्ह—चांदनी। अंगलाई—दाह ॥११७॥ जान सुतंतर—सुजान तो स्वतंत्र है। जानै अंतर—जो दुःख मैं दिन रात झेलती हूँ, उसे वे ही दिन और रात जानते हैं, इसका यथार्थ वर्णन नहीं हो सकता है। यदि वर्णन करने की चेष्टा की जावे, तो उस वर्णन की यथार्थता में दिन रात का अंतर हो जाता है॥११८॥

चन्द चकोर की चाह करै,
'घन आनन्द' स्वाति पपीहा कों धावै।
त्यों बस रैनि के ऐन बसै रवि,
मीन पै दीन ह्वै सागर आवै॥
मोसों तुम्हैं सुनौ जान कृपानिधि,
नेह निबाहिबौ यों छबि पावै।
त्यों अपनी रुचि राचि कुबेर,
सु रङ्कहि लै निज अङ्क बसावै॥११९॥

ज्यों बुधि सो सुघराई रचै कोऊ,
सारदा कों कविताई सिखावै।
मूरतिवन्त महालछमी उर,
पोत-हरा रचि लै पहिरावै॥
रागवधू चित चोरन के हित,
सोधि सुधारि कै तानहिं गावै।
त्योंही सुजान तियै 'घन आनन्द',
मो जियबोरई - रीति रिझावै॥१२०॥

चंद · चाहको—चन्द्रमा उलटे चकोर से प्रेम। धावै—दौड़े। यों बस··रवि—सूर्य रात्रि के वश में हो कर उसके घर रहे। अपनी रुचि राचि—अपनी इच्छा से ही। रंकहि=दरिद्र को॥११६॥

सुघराई=चतुरता। सारदा—सरस्वती। पोत-हरा—कांच की गुरियों की माला। राग-वधूचित चोरनि—चित्त के चुराने वाली रागिनियों के लिए। प्रिय—हृदय। बोरई रीति—पागलपन की भांति॥१२०॥

पाप के पुंज सकेलि सु कौन धौं,
  आन घरी में बिरंचि बनाई।
रूप के लोभनि रीझ भिजाय कैं,
  हाय इतें पै सुजान मिलाई॥
क्यों 'घन आन्द' धीर धरैं,
  बिन-पांख निगोड़ी मरैं अकुलाई।
प्यास भरी बरसैं तरसैं,
  मुख देखन कों अँखियाँ दुखहाई॥१२१॥

साधनि ही मरिये भरिये,
  अपराधनि बाधनि के गन छावत।
देखै कहा ? सपनौंहूँ न देखत,
  नैन यौं रैनि दिना झर लावत।
जो कहूँ जान लखैं 'घन आनन्द',
  तौ तब नेकु न औसर पावत।
कौन बियोग भरे अँसुवा ?
  जु सँजोग में आगेई देखन धावत॥१२२॥

सकेलि—इकट्ठा करके। आन विचित्र। घरी—घड़ी। रूप के लोभनि—रूप का लोभ देकर। सुजान मिलाई—सुजान से प्रेम करा दिया (बिरंचि ने)। निगोड़ी—बिना गोड़ की (स्त्रियों की एक प्रिय गाली)। दुखहाई—दुःख की मारी॥१२१॥

साधनि—देखने की अभिलाषा से। भरिये—कष्ट सहती हूँ। अपराधनि···छावत—अपराध, बाधा बनकर सामने छा जाते हैं। जो···लखैं—यदि कहीं सुजान दिखाई भी पड़ जायं॥१२२॥

अकुलानि के पानि पर्‌यो दिन राति,
सु ज्यौं छिनकौ न कहूँ बहरै।
फिरबोई करै चित चेटक-चाक लौं,
धीरज को ठिकु क्यौं ठहरै।
भए कागद-नाव उपाव सबै,
'घन आनन्द' नेह-नदी गहरै।
बिन जान सजीवन कौन हरै,
सजनी! बिरहा बिस की लहरै॥१२३॥

सोयें न सोइबो, जागें न जाग,
अनोखियै लाग सु आंखिन लागी।
देखत फूल, पै भूल भरी,
यह सूल रहै नित ही चित जागी॥
चेटक जान-सजीवन-मूरति,
रूप अनूप महा रस-पागी।
कौन बियोग-दसा 'घन आनन्द',
मो मति सङ्ग रहै अति खागी॥१२४॥

अकुलानि के…पर्‌यौ – बेचैनी के हाथ में पड़ा हुआ। छिनकौ = क्षणभर को भी। बहरै—बहलाता। चेटकचाक लौं = जादू के पहिये की भांति। ठिक—अस्तित्व। भए· सबै—सब उपाय व्यर्थ हो गए। नेह-नदी गहरै—प्रेम की नदी के वेग के साथ उमड़ने पर॥१२३॥

देखत फूल—देखने में तो फूल सी लगती है। चेटक. मूरति—सुजान प्राणदाता की मूर्ति जादू है, जो फूल के समान कोमल होने पर भी हृदय में कांटे के समान खटकती रहती है। मो ··खागी—मेरी मति के साथ मिली रहती है (न जानेकौन से विचित्र वियोग की दशा)॥१२४॥

मरिबो बिसराम गनै वह तौ,
यह बापुरौ मीच - तज्यौ तरसै।
वह रूप छटा न सँभारि सकै,
यह तेज तबै चितवै बरसै।
'घन आनन्द' कौन अनोखी दसा,
मति आवरी बावरी ह्वै थरसै।
बिछुरे मिलें मीन पतंग दसा कहा,
मो जिय की गति कों परसै ॥१२५॥

निस द्यौस खरी उर - मांझ अरी,
छकि रंग - भरी मुरि चाहनि की।
तकि मोरनि त्यों चख ढोरि रहे,
ढरिगौ हिय ढोरनि बाहनि की॥
चटदै कटि पै बटि प्रान गए,
गति सौं मति मैं अवगाहनि की।
'घन आनन्द जान लखी जब तें,
जक लागियै मोहि कराहनि की ॥१२६॥

इस सवैये में प्रेमी मछली और पतंग सेअपने प्रेम की दशा अधिक कठिन बताता है। वह - मछली। यह—जीव। बापुरौ—बेचारा। मीच-तज्यौ—मृत्यु भी जिसको छोड़ गई है। थरसै—(बावली होकर) रुक जाती है। बिछुरै परसै—वियोग में मछली और संयोग में पतंग क्या मेरी दशा को पा सकते हैं ॥१२५॥ खरी - उत्तम, छवि का विशेषण। उर-माँझ—हृदय में। अरी अड़ी हैं। मुरि चाहनि की—मुड़कर देखने की। तकि मोरनि त्यों - मुड़ने की ओर देखकर। चख ढोरि रहे—मेरी आँखें ढल गई, उधर चली गईं। ढरिगौ.. बाहनि

किहिं नेह बिरोध बढ़्यौ सब सों,
डर आवत कौन के लाज गई।
जिहिं के भरि भार पहार दवै,
जग-माँझ भई तिन तैं हरई ॥
दृग काहि लगे जू कहूँ न लगैं,
मन-मानिक ही अनखानि ठई।
'घन आनन्द' जान अजौं नहिं जानत,
कैसे अनैसे हैं हाय दई ॥१२७॥

इत बाट परी सुधि रावरे भूलनि,
कैसो उराहने दीजियै जू।
अब तौं सब सीस चढ़ाय लई,
जु कछू मन भाई सु कीजियै जू।
'घन आनन्द जीवन-प्रान सुजान!
तिहारियै बातनि जीजियै जू।
नित नीके रहौ तुम चाँड़ कहाय,
असीस हमारियौ लीजियै जू ॥१२८॥

की—बाँहों के शुंडाकार सुडालपन को देखकर हृदय उसकी ओर ढल गया। चट दै—शीघ्रता से। गति अवगाहनि की—उसने अपनी चाल से मेरी मति में हलचल उत्पन्न कर दी। जक—रट ॥१२६॥ किहिनेह—किसके प्रेम के कारण। तिन तैं—उनसे; तिनके से भी अधिक। हरई—हल्की। मन-मानिक—मन रूपी माणिक्य। अनखानि—उदासीनता। जान -सुजान होकर भी। अनैसे—विचित्र ॥१२७॥ बाट-परी—लुट गई। बातनि=बातों को याद करके। चाड़—उत्कट अभिलाषा, कमी ॥१२८॥

बधिकौ सुधि लेत सुन्यो हतिकै,
गति रावरी क्यौंहूँ न बूझि परै।
मति आवरी बावरी ह्वै जकि जाय,
उपाय कहूँ किन सूझि परै।
'घन आनन्द' यों अपनाय तजौ,
इन सोचनि ह्यौं मन मूझि परै।
दिन-रैन सुजान-वियोग के बान,
सहै जिय पापी न जूझि परै १२९॥

रंग लियो अबलानि के अंग तें,
च्वाय कियो चित चैन कौ चोवा।
और सबै सुख-सौंधे सकेलि,
मचाय दियो 'घनआनँद' होवा॥
प्रान-अबीरहि फैंट भरें अति,
छाक्यौ फिरै मति की गति खोवा।
स्याम सुजान बिना सजनी,
ब्रज यों विरहा भयो फाग-बिगोवा॥१३०॥

बधिकौ—कसाई भी। हतिकै—मारकर। मति—बुद्धि। मूझि परै—उदास रहता है। पापी न··· परै—पापी मन मर नहीं जाता॥१२९॥

बिरह फाग मचाने वाला कहा गया है। रंग अंगतें—स्त्रियों का उसने रंग ले लिया है, उनका रंग उड़ गया है। चोवा—सुगंधित पदार्थों को उबाल कर निकाला हुआ सुगंधित इत्र। च्वाय···चोवा—हृदय के सुख का चोवा निकाल लिया है। सुख-सौंधे=सुख रूपी सुगंधित पदार्थ। सकेलि—इकट्ठा करके। फाग-बिगोवा—फाग का नाश करने वाला॥१३०॥

घर ही घर चौचँद - चांचरि दै,
बहु भांतिनि रंग रचाय रह्यो।
भरि नैन हिये हरि सूझि सम्हार,
सबै करि नाक नचाय रह्यौ॥
'घनआनँद' पै ब्रजगोरिन कौं,
नख तें सिख लौं चरचाय रह्यौ।
लखि सूनौ सकै कित रावरो ह्वै,
बिरहा नित फाग मचाय रह्यौ॥१३१॥

सोंधे की बास उसासहिं रोकत,
चंदन दाहक गाहक जी कौ।
नैननि बैरी सो है री! गुलाल,
अबीर उड़ावत धीरज ही कौ॥
राग बिराग धमार त्यौं धार सी,
लौटि परयौ ढङ्ग यों सब ही कौ।
रंग - रचावन जान बिना,
'घनआनँद' लागत फागुन फीकौ॥१३२॥

चौचंद—निन्दा, बदनामी। चाँचरि—फाग का राग। भरि नैन हिये—आँखों को आँसुओं से और हृदय को भावों से भर कर। हरि सूझि सम्हार—नेत्रों में से दृष्टि और हृदय से ज्ञान हर कर। चरचाय रह्यौ—(१) रंग रहा है (२) परीक्षा ले रहा है। सकै कित—शंकित नहीं होता॥१३१॥ प्रिय वियोग में होली का दुखद होना—सोंधे की बास—सुगंधित पदार्थों की सुन्दर गंध। धमार—होली का एक राग। लौटि परयौ—उलटा हो गया है। रंग-रचावन—रंग खेलने वाले, आनंद देनेवाले॥१३२॥

सुन री सजनी! रजनी की कथा,
इन नैन-चकोरनि ज्यों बितई।
मुख-चन्द सुजान सजीवन कौ,
लखि पायें भई कछु रीति नई॥
अभिलाषनि आतुरताई-घटा,
तब ही 'घन आनन्द' आनि छई।
सु बिहात न जानि परी भ्रम सी,
कब ह्वै बिसवासिनि बीति गई॥१३३॥

मन जैसें कछू तुम्हें चाहत है,
सु बखानिए कैसे सुजान ही हौ!
इन प्राननि एक सदा गति रावरे,
बावरे लौं लगियै नित लौ॥
बुधि औ सुधि नैननि बैननि मैं,
करि बास निरन्तर अन्तर गौ।
उघरौ जग छाय रहे 'घन आनन्द',
चातक त्यों तकियै अब तौ॥१३४॥

संयोगावस्था में रात्रि। आतुरताई-घटा—हड़बड़ी रूपी बादलों की घटा। बिहात—व्यतीत होते। बिसवासिन—विश्वासघातिनी रात॥१३३॥ बखानिए कैसे—किस प्रकार वर्णन करूं। गति रावरे—केवल एक आप ही की शरण है। लौ—लगन। बुधि…गौ=बुद्धि, स्मृति। उघरौ जग—मन अब संसार से हट गया है। छाय रहे घन-आनंद—हे घनानंद आप ही छा रहे हैं। चातक त्यों—चातक की ओर॥१३४॥

लगियै रहै लालसा देखन की,
किहि भाँति भटू ! निसि-द्योस कटै।
करि भीर भरी यह पीर महा,
बिरहा तनिकौ हिय तैं न हटै॥
'घन आनन्द' जान सँयोग समै,
बिसमै बुधि एक ही वेर बटै।
सपनो सो टरै, फिरि सौगुनो चेटक,
बाढ़त डाढ़त चोटि घटै ॥१३५॥

अति सूधो सनेह को मारग है,
जहाँ नेकु सयानप-बाँक नहीं।
तहाँ साँचे चलैं तजि आपन पौ,
झिझकैं कपटी जे निसाँक नहीं॥
'घन आनन्द' प्यारे सुजान सुनौ,
यहाँ एक तैं दूसरौ आँक नहीं।
तुम कौन धौं पाटी पढ़े हौ कहौ,
मन लेहु पै देहु छटाँक नहीं ॥१३६॥

भटू—हे सखी। भीर भरी पीर—अत्यंत पीड़ा। बिसमै…बटै—बुद्धि एक साथ ही बिस्मय में पड़ जाती है। डाढ़त—जलाता है। घटै—हृदय को ॥१३५॥

सयानप—चतुरता। सयानप-बांक—चतुरता का टेढ़ापन। निसाँक—निःशङ्क, निडर। आँक—नियम, व्रत। मन—(१) हृदय (२) ४० सेर की मात्रा। छटाँक—(१) $\frac{१}{१६}$ सेर (२) शोभा का चिन्ह मात्र भी ॥१३६॥

बैरी वियोग की हूकनि जारत,
कूकि उठै अचका अधिरातक।
बेधतु प्रान विना ही कमान,
सु बान से बोल सों कान ह्वै घातक॥
सोचनि ही पचिये बचिए,
कित डोलत मो तन लाए महा तक।
वे 'घनआनन्द' जाय छए उत,
पैंडे पर्यौ इत पातकी चातक॥१३७॥

कित को ढरिगौ वह ढार अहो,
जिहि मो तन आँखिन ढोरत हे।
अरसानि गही उहि बानि कछू,
सरसानि सों आनि निहोरति हे।
'घनआनन्द' प्यारे सुजान सुनौ,
तब यों सब भांतिनि भोरत हे।
मन माँहि जो तोरन ही तो कहौ,
बिसवासी सनेह क्यों जोरत हे॥१३८॥

अचका—यकायक। अधिरातक-आधी रात के लगभग। कमान—धनुष। बान सों—वाण के समान वचनों से। ह्वै—में होकर। पचियै—हैरान हैं। तक—सीध, लक्ष्य। छए—बस गए हैं। पैंडे पर्यो—पीछे पड़ गया है॥१३७॥ कितको—किधर। ढरिगौ—बह गया। ढार—झुकाव, प्यार। ढोरत है—प्रकट करते थे। अरसानि...बानि—आपके उस स्वभाव ने आलस्य ग्रहण कर लिया है। सरसानि सौं—सरसता के साथ। निहोरत हे—प्रार्थना करते थे। भोरत हे—ठगते थे। बिसवासी—विश्वासघाती॥१३८॥

'घनआनँद' प्यारे सुजान ! सुनौ,
जिहि भाँतिनि हौं दुख सूल सहौं।
नहिं आवनि - औधि न रावरी आस,
इतेक पै एक सी बाट चहौं॥
यह देखि अकारन मेरी दशा,
कोऊ बूझै तौं उत्तर कौन कहौं।
जिय नेकु बिचारि कै देहु बताय,
हहा पिय ! दूरि तैं पाँय गहौं॥१३९॥

बिरहा - रबि सों घट-व्योम तच्यो,
बिजुरी सी षिवैं इकली छतियाँ।
हिय-सागर तें दृग-मेघ भरे,
उघरे बरसैं दिन औ रतियाँ॥
'घनआनंद' जान अनोखी दसा,
न लखौं, दई कैसे लिखौं पतियाँ।
नित सावन डीठि सु बैठक मैं,
टपकै बरुनी तिहि ओलतियां॥१४०॥

आवनि-औधि—लौटने की अवधि। एक सी बाट चहौं—एकटक बाट जोह रही हूँ॥१३९॥

घट-व्योम = हृदय रूपी आकाश। षिवैं—(क्षिप) चमकती हैं। न लखौं—कुछ दिखलाई नहीं देता। डीठि सु बैठक में—दृष्टि रूपी बैठक में। टपकैं ओलतियाँ—बरुनी ओलती की भांति टपकती है, ओलती या औलाती छप्पर का वह भाग है, जहां से पानी नीचे गिरता है॥१४०॥

इत भायनि भाँवरे भौंर भरैं,
उत चायनि चाहि चकोर चकैं।
निसि बासरि फूलनि भूलनि मैं,
अति रूप की बात न ज्योर सकैं॥
'घन आनन्द' घूंघट ओट भये,
तब बावरे लौं चहुँ ओर तकैं।
पिय तो सुख को टुक देखि सखी,
निज नैन विसेष सुजान छकैं॥१४१॥

क्यों हूँ न चैन परै दिन रैन,
सु पैंडे पर्‌यो विरहा बजमारौ।
ज्यौं बहरै न कहूँ छन एकहू।
चाहै सुजान सजीवन प्यारौ॥
ऐसी बढ़ी 'घन आनन्द' बेदनि,
दैया उपाय तैं आवै तँवारौ।
हौं हीं भरौं अकली कहौं कौन सों,
जा बिध होत है साँझ सवारौ॥१४२॥

इत…चकैं—इधर दिनमें मुख को कमल समझ कर भौंरे बनकर नेत्र उसका चक्कर काटते हैं और उधर रात में चकोर के समान नेत्र मुख को चन्द्रमा समझ कर उसे प्रेम से देखते हैं और चकित होते हैं॥१४१॥

पैंडे पर्‌यौ—पीछे पड़ गया है। ज्यौ—जी, मन। बहुरै=बहलाता नहीं। वेदनि—वेदना, दुख। तँवारौ—आंखों के आगे अँधेरा आ जाना। भरौं—सहन करती हूँ। सवारौ=सबेरा॥१४२॥

जिन आँखिन रूप चिन्हारि भई,
तिनकी नित नींद ही जागनि है।
हित-पीर सों पूरित जो हियरा,
फिर ताहि कहौं कहाँ लागनि है॥
'घन आनन्द' प्यारे सुजान सुनौ,
जियराहिं सदा दुख दागनि है।
सुख मैं मुख-चन्द बिना निरखे,
नख तें सिख लों बिष पागनि है॥१४३॥

बिरच्यो किहि दोस न जानि सकौं,
जु गयो तजि मो मन रोसन तैं।
जिय! ता बिन यों अब आतुर क्यों,
तब तो तनकौ बिरमायो न तैं॥
'घन आनन्द' जान अमोही महा,
अपनाय इतै पर त्यागि हतैं।
अध बीच पर्यो दुख-ज्वाल जरै,
सबको सुख को हठि द्वार दतैं॥१४४॥

तिनकी…जागनि है=उनका नित्य जगना ही सोना है, उनको दिन रात नींद नहीं आती। हित पीर=प्रेम की पीड़ा। लागनि—लगना। दागनि=जलन। सुखमैं—सुखमय॥१४३॥

बिरच्यौ किहि दोस—क्या दोष मैंने किया (यह मैं न जान जान सका)। जिय—हे हृदय। बिरमायौ—ठहराया। अपनाय…हतैं—इतना अपना कर त्याग देते हैं और फिर मार देते हैं।

पूरन प्रेम को मन्त्र महा पन,
जा मधि सोधि सुधार है लेख्यौ।
ताही के चारु - चरित्र बिचित्रनि,
यों पचि कै रचि राखि बिसेख्यौ॥
ऐसो हियो हित - पत्र पवित्र जु,
आन - कथा न कहूं अवरेख्यौ।
सो 'घन आनन्द' जान अजान लौं,
टूक कियो पर बांचि न देख्यौ॥१४५॥

जीव की बात जनाइए क्यों करि,
जान कहाय अजाननि आगौ।
तीरनि मारि कै पीर न पावत,
एक सो मानत रोइबो रागौ॥
ऐसी बनी 'घन आनन्द' आनि,
जु आन न सूझत, सो किन त्यागौ।
प्रान मरैंगे भरैंगे बिथा,
पै अमोही सों काहु को मोह न लागौ॥१४६॥

इस सवैये में हृदय को एक प्रेम-पत्र माना है। पन = प्रण। पचिकै—बड़े कष्ट के साथ। हित-पत्र—हृदय रूपी प्रेम-पत्र। अवरेख्यो = अंकित की। आन कथा···अरेख्यो—जिसमें दूसरे की कथा कभी अंकित नहीं हुई। जान – सुजान (होकर भी)। बांचि न देख्यो = कभी मेरे हृदय के पत्र को पढ़ा नहीं; मेरे हृदय के भावों को कभी पहिचाना नहीं॥१४५॥ जीव···आगौ—जो सुजान कहाकर भी मूर्खों से बढ़कर है, उनसे मन की बात क्या कही जाय। रागौ—गाना। सो किन त्यागौ—वह चाहे भले ही छोड़ दे। भरैंगे—कष्ट सहेंगे॥१४६॥

तोहि तौ खेल पै मो हिय सेल,
सो एरे अमोही ! बिछोह महा दुख ।
जाहि जु लागै सु ताहि सहैगो,
दहैगो पर्‌यो, लहि तू तौ सदा सुख ॥
एक ही टेक न दूसरी जानत,
जीवन प्रान सुजान लिए रुख ।
ऐसी सुहाय तौ मेरी कहा बस,
देखिहौं पीठि दुराय हौ जो मुख ॥१४७॥

प्यार को सो सपनो हंसि हेरनि,
ऐसी चितौनि कहौ कहां पाई ।
बंक महा बिस - भोवन प्रान,
सुधाई - सनी मुसकानि - सुधाई ॥
यों 'घनआनन्द' चेटक मूरति,
लै जब अंतर - ज्वाल बसाई ।
कैसे दुराइहैं जान अमोही,
मिलाप में एतियौ उपिलताई ॥१४८॥

सेल—बरछी । बिछोह—वियोग । दहैगो पर्‌यो—पड़ा जलता रहेगा । रुख—सामने ॥१४७॥

प्यार···हेरनि—हँसकर देखना जिसमें प्यार का स्वप्न मात्र है झूठा प्यार । बिस-भोवन—विष में भी देने वाली । सुधाई-सनी—अमृत से सनी । मुसकानि सुधाई—मुस्कान का भोलापन । उपिलताई—परायापन ॥१४८॥

'घन आनन्द' जान! सुनौ चित दै,
हित-रीति दई तुम तौं तजि कैं।
इत साहस सों घन-संकट कोटिक,
आए समाजनि कों सजि कैं॥
मन के पन पूरन पूरि रह्यो,
सु तजै कित या विधि सों भजि कैं।
यह देख सनेह-विदेह-दसा,
अति हीन ह्वै दीन गए लजि कैं॥१४९॥

किंसुक-पुंज से फूलि रहे,
सु लगो उर दौ जु बियोग तिहारे।
मातो फिरै न थिरै अबलानि पै,
जान! मनोज यों डारत मारें॥
ह्वै अभिलाषनि-पात निपात,
कढ़ै हिय-सूल उसासनि डारे।
है पतझार बसन्त दुहूँ;
'घन आनन्द' एक ही बार हमारे॥१५०॥

जान—हे सुजान। हित-रीत—प्रेम का नियम। पन-प्रण। अति हीन ह्वै…लजिकैं-स्नेह के कारण मेरी विदेह दशा को देखकर वे संकट समूह अत्यंत लज्जित होकर लौट गए॥१४९॥ किंसुक-पुंज—टेसू के फूल। से—समान। फूलि रहे—दग और पलाश फूल रहे हैं। दौ—दावाग्नि। माता=मतवाला। मनोज—कामदेव। पात=पत्ते। निपात=गिरना। उसासनि-डोर=श्वासों की शाखाएं। फूल खिल रहे हैं, नयी शाखाएं निकल रही हैं और साथ ही पतझड़ भी हो रहा है; इसलिए हमारे पतझड़ और बसंत दोनों एक ही साथ हैं॥१५०॥

जीवनि मूरति जान ! सुनौ गति,
जौ जिय रावरो प्यार न पावतो।
सङ्गम रङ्ग अनङ्ग - उमङ्गनि,
झूमिन आनन्द -- अंबुद छावतौ॥
लाड़िलौ जोबन त्यों अधरासव,
चोंपनि लोभी मनै नहिं भावतौ।,
तौ उरदाहक प्राननि - गाहक,
रूखे भये को परेखो न आवतौ ॥१५१॥

'घन आनन्द' जीवन - रूप सुजान हौ,
प्रान पपीहा पनैई पढ़ै।
पै दुहूँ दिसि चाहि अचम्भो महा,
करिए कहा सोच प्रवाह बढ़ै।
न कहूँ दरसौ, बरसौ बिस - बारि,
सु ये अपराध गढ़ें न कढ़ै।
कित कौ नित ही इत याहि दहौ,
जु रहौ चित ऊपर चोप चढ़ै ॥१५२॥

जान—हे सुजान। अनंग-उमंगनि=कामदेव की उमंगों से। आनंद-अंबुद—आनंद के बादल। उर-दाहक—हृदय को जलाने जलाने वाले। परेखौ न आवतौ—बुरा न मालूम पड़ता ॥१५१॥

जीवन-रूप - प्राण स्वरूप, जल रूप। पपीहा-पनैई—पपीहे का प्रण। दूहूँ दिसि—आपकी ओर और मेरी ओर। चाहि—देखकर। बिस-वारि—विषैला पानी ॥१५२॥

सूने परे दृग-भौन सुजान जे,
तें बहुरें कब आय बसायहौ।
सोचन ही मुरझ्यो पिय जो हिय,
सो सुख सींचि उदेग नसायहौ॥
हाय दई 'घन आनन्द' ह्वै करि,
कौ लौं बियोग के ताप तपायहौ।
ये हो हँसी जिन जानो हहा,
हमें रवाय कहौ अब काहि हँसायहौ॥१५३॥

कित लोग कथा सु बृथा ही करौ,
यह तो तब ही अनुमानि लई।
अपनेई सनेह ठगी भ्रम है,
प्रतिबिम्बहि मूरति मानि लई॥
'घन आनन्द' वेहू सुजान हुते,
किहि गौं हठ कै सठबानि लई।
ब्रज देखत होत सुमारनि कौ,
तजि भाजि बचे हम जानि लई॥१५४॥

दृग-भौन = नेत्ररूपी घर। उदेग – उद्वेग, दुख। कौलौं – कब तक॥१५३॥

कित—क्यों। अपनेई सनेह ठगी—अपने प्रेम के कारण धोखे में पड़ गई है। सठ-वानि—दुष्टता का स्वभाव। किहि गौं—किस कारण। सुमारनि—उत्पात॥१५४॥

चूर भयो चित पूरि परेखनि,
एहो कठोर! अजों दुख पीसत।
साँस हिए न समाय सकोचनि,
हाय इते पर बान कसीसत॥
ओटनि चोट करौ 'घन आनन्द'
नीके रहौ निस द्यौस असीसत।
प्राननि-बीच बसे हौ सुजान,
पै आँखिन दोस कहा जु न दीसत॥१५५॥
ज्यौं बहरै न कहूँ ठहरै मन,
देह सो आहि बिदेह को लेखौ।
देखत जो दुखियां अखियाँ नित,
बैरियौ की सुपने सु न देखौ॥
हौ तौ सुजान महा 'घन आनन्द'
पै पहिचान कि राखो न रेखौ।
हाय दई यह कौन भई गति,
प्रीति मिटेहूँ मिटै न परेखौ॥१५६॥

परेखनि—तुम्हारे कामों के दुःखमय सोच से। दुख पीसत—दुख से पीसते हो। सांस…सकोचनि—संकोच के कारण हमने आह की साँस भी बाहर नहीं निकाली, पर अब वह सांस हृदय में नहीं समाती। बान कसीसत=बाण खींच रहे हो। असीसत—आशीर्वाद देती हूँ। दीसत—दिखाई देते हो॥१५५॥

बहरैन—बहुलता नहीं। न कहूँ मन—न मन कहीं लगता है। देखत देखौ—जो दृश्य हमारी आंखे देखती हैं, वह बैरी की आँखें भी स्वप्न में न देखें॥१५६॥

दृग - नीर सों दीठहिं देहु बहाय,
पै वा मुख कौं अभिलाषि रही।
रसना बिष बोरि गिराहिं गसौं,
वह नाम सुधानिधि भाषि रही॥
'घन आनन्द' जान - सुबैननि त्यों,
रचि कान बचे रुचि साखि रही।
निज जीवन पाय पलै कबहूँ,
पिय कारन यों जिय राखि रही॥१५७॥

अँसुवानि तिहारे बियोग ही सों,
वरसा - रितु - बेलि सी बाल भई।
हिय - पोषनि चोंपनि कोंपनि झालरि,
लाज कै ऊपर छाय गई॥
'घन आनन्द' जान सदा हित झूमनि,
घूमनि देखिए नित्त नई।
बलि नेकु मया करि हेरौ इहा,
अबला किधौं फूलि रही तुरई॥१५८॥

दृग-नीर—आँसू। पै···रही—पर प्रियतम के मुख को देखने की अभिलाषा इनको है। गिराहि—वाणी को। गसौं—नष्ट कर दूँ। बैननि—वाणी से। रुचि साखि रही—रुचि ही इस बात की साक्षी है। पलै—फलै फूलै॥१२७॥

अँसुवानि सों=तुम्हारे वियोग के आँसुओं से जो वर्षा ऋतु के समान हैं। हिय···झालरि—हृदय की उमंग ही उस बेल को पोषित कर झालरित कर देती है। लाज=छप्पर, लज्जा। लज्जा जाती रही। माया=दया॥१२८॥

'घन आनन्द' मीत सुजान हहा,
    सुनिए बिनती कर जोरि करैं।
अरसाहु न नेक रिसाहु अहो,
    धरि ध्यानहि दूरि सो पाय परैं॥
मन भायो बियोग मैं जारिबो जौ,
    तौ तिहारी सौं नीकैं जरैंऽरु मरैं।
पै तुम्हें मत कोऊ कहौ हित-हीन,
    सु या दुख बीच अमीच मरैं॥१५९॥

हम एक तिहारियै टेक गहैं,
    तुम छैल अनेकनि सों सरसौ।
हम नाम अधार जिवावत ज्यौ,
    तुम दै बिसवास बिसै बरसौ॥
'घन आनन्द' मीत सुजान सुनौ,
    तब गौं गहि क्यों अब यों अरसौ।
तकि नेकु दई त्यों दया ढिग ह्वै,
    सु कहूँ किन दूरहूँ तें दरसौ॥१६०॥

अरसाहु...अहो—यहां न दोनों ओर अर्थ देता है—आलस न करो और क्रोध भी न करो। भायौ—अच्छा लगा। हित-हीन—प्रेम हीन। अमीच मरैं—बिना मौत के मरते हैं॥१५९॥

सरसौ—प्रेम करते हो। ज्यौ—जीव। बिसवास—विश्वास। बिसै—विष को। गौंगहि—घात लगा कर। अरसौ—आलस करते हो। तकि...दई—थोड़ा ईश्वर की ओर भी देखो। दरसौ—दर्शन देते हो॥१६०॥

पर काजहि देह को धारि फिरौ,
परजन्य जथारथ ह्वै दरसौ।
निधि-नीर सुधा की समान करौ,
सबही बिधि सज्जनता सरसौ॥
'घन आनन्द' जीवन दायक हौ,
कछू मेरियौ पीर हिए परसौ।
कबहूँ वा बिसासी सुजान के आँगन,
मो अंसुवानिहि लै बरसौ॥१६१॥
मानस को बन है जग पै,
घिन मानस के बन सो दरसै सो।
जे बन-मानस ते सरसे,
तिन सों मिति मानस क्यों सरसै हो॥
हाय दई! ढरि नेकु इतै,
सु किते परसे जिहि ज्यौ तरसै ओ।
चातक-प्रान जिवाय दै ज्यान,
हहा 'घन आनन्द' कों बरसै जो॥१६२॥

परजन्य—दूसरों के लाभ के लिए जो हो (पर+जन्य), बादल का एक नाम। निधि—समुद्र। जीवन दायक—जल देनेवाले, प्राण दाता। मो···बरसौ—मेरे आँसू प्रिय के आँगन में बरसा दो, जिससे वे मेरी व्यथा जान जावें॥१६१॥

मानस को बन—मनुष्यों का समूह। मानस—हृदय। बन-मानस—वन मनुष्य। सरसै हो—आनंदित हो। ढरि···इतै=थोड़ी इधर कृपा कर। चातक···जो—आनंद रूपी घन को बरसा कर पपीहे रूपी प्राणों के जीवन को जिला दो॥१६२॥

बात सुजाननि की 'घन आनन्द'
डारति हाय अचेत किए चित।
काननि बेधति पैठि कै प्राननि,
दीसै नई अकुलानि नितै नित॥
क्यौं भरियै करियै सु कहा हमैं,
आनि बनी इन लोगनि सों इत।
भीर में हाय अकेले अधीर हैं,
रीझहि लै रिझवार गए कित॥१६३॥

कान्ह! परे बहुतायत में,
इकलेन की बेदन जानौ कहा तुम।
है! मनमोहन मोहै कहूँ न,
बिथा बिम नैन की मानौ कहा तुम॥
बौरौ बियोगिनि आप सुजान है,
हाय कछू उर आनौ कहा तुम
आरतिवन्त पपीहन कों,
'घन आनन्द' जू पहिचानौ कहा तुम॥१६४॥

सुजाननि—सुजान की, चतुर व्यक्ति की। दीसै—दिखाई देती है। नितैनित—नित्य प्रति ही। क्यों भरियै—किस प्रकार कष्ट सहन करें। आनि बनी—काम पड़ गया है। रिझवार—प्रियतम कित—किधर॥१६३॥

बहुतायत में—अनेक प्रेमियां के बीच में। इकलेन—जो केवल एक से प्रेम करनेवाला है। मन मोहन—दूसरों का मन मोहनेवाले। बिमनैन—जिनका मन उनको छोड़कर कहीं चला गया हो। आरतिवन्त—दुःखी॥१६४॥

यह नेह तिहारो अनोखो लग्यो,
जु परयो चित रूखौ सबै तन ही।
बिसरै छिन जो सुकरै सुधि तो,
गुन माल बिसाल गनै गन ही॥
हित - चातिक - प्रान सजीवन जान,
रचे बिधि 'आनन्द के घन' ही।
दरसौ परसौ बरसौ सरसौ,
मन लेहू गए पै बसौ मन ही॥१६५॥

सावन आवन हेरि सखी,
मन भावन आवन चोप बिसेखी।
छाये कहूँ 'घन आनन्द' जान,
सम्हारि की ठौर लै भूलनि लेखी॥
बूंदैं लगैं सब अङ्ग दगै,
उलटी गति आपने पापनि पेखी।
पौन सों जागत आगि सुनी ही,
पै पानी सों लागत आंखिनि देखी॥१६६॥

नेह—प्रेम, चिकनई। रूखौ—नीरस, सूखा। सबै तन ही—सब ओर। परयो तन ही—मन सब ओर से फिर गया है। हित-चातिक—प्रेम रूपी पपीहे के (प्राण)। दरसौ—दिखाई देते हो। परसौ—स्पर्श करते हो। सरसौ—आनंद देते हो॥१६५॥

चोप—प्रबल इच्छा। सम्हारि···लेखी—हमारी सम्हाल के स्थान पर भूलनि का लेखा करके। जिस समय उनको हमारी याद करनी चाहिए थी, उसी समय वे हमको भूल गए। वर्षा ऋतु में विरहिणी के दुःख का वर्णन है॥१६६॥

हम सों हित कै कित कों नित हीं,
चित - बीच बियोगहि पोइ चले।
सु अखैबट - बीज लों फैलि पर्‌यो,
बनमाली कहाँ धौं समोइ चले॥
'घन आनन्द' छाँह बितान तन्यौ,
हमें ताप के आतप खोइ चले।
कबहूँ तिहि मूल तौ बैठिए आय,
सुजान जो बीजहिं बोइ चले॥१६७॥

चितयौ जिहि भांति सकौं सहि क्यों,
रहि क्यों हूँ सकै नहिं तातु हियो।
सु न जानति जीवति कौनि सी आस,
बिसास में प्रेम को नेम लियो।
'घनआनँद' कैसे सुजान हौ जू,
जेहिं सूखनि सौं चित छाँह छियो।
करी बावरी रावरी बोलनि हौं,
कहि 'प्यारी' बनाय के प्यार कियो॥

पोइ चले—हृदय में वियोग घुसा चले। समोइ चले—मिलाकर चल दिये, किस कष्ट में हमको डालकर स्वयं चले गए। बितान—मंडप। ताप के आतप—गर्मी की अधिकता। कबहूँ...चले—जिस वृक्ष का बीज आपने स्वयं बोया था, उसकी छाया में तो आ कर कभी बैठिए। देखिए कितनी गरम छाया है॥१६७॥ तातु=गरम, प्रेम से भरा हुआ। जेहिं...छियो—कि तुमने शुष्कता से ही हृदय की छाया को छुआ। एक तो हृदय तक पहुँचे ही नहीं, छाया तक ही रह गए और दूसरे उसे भी बड़ी नीरसता से छुआ। बनायके=ऊपरी, झूठा॥१६८॥

'घनआनँद' जीवन रूप सुजान है,
पावत क्यों दृग प्यास नहीं।
अरु फूलि रहे कुसुमाकर से,
सु कहूँ पहिचान की बास नहीं॥
रसिकाई भरे अपने मन पैं,
सपने रस आस हूँ पास नहीं।
पचि कौने बिरंचि रचे हौ कहौ,
जु हितूनि हतौ हिय त्रास नहीं॥१६९॥

जिनकों नित नीके निहारत हीं,
तिनकों अँखियाँ अब रोवत हैं।
पल-पांवड़े पायनि चायनि सों,
अँसुवानि के धारनि धोवति हैं॥
'घनआनंद' जान सजीवन कों,
सपने बिन पायेई खोवति हैं।
न खुली मुंदी जानि परैं कछु ये,
दुखहाई जगे पर सोवति हैं॥१७०॥

जीवन-रूप—जल रूप, प्राण रूप। पावत क्यों दृग प्यास नहीं—नेत्रों की प्यास क्यों नहीं बुझती। कुसुमाकर=उद्यान—बास=गंध। पचि—मैं हैरान हूं। हितूनि—हितैषियों को। हतौ—मारते हो॥१६९॥

नीके निहारत हीं—भली भांति देखती थीं। पल-पाँवड़े—पलक रूपी पाँवड़े। पायनि चायनि—पैरों के चाव से; प्रियतम के मार्ग में आँखें बिछाने को नायिका प्रस्तुत है। सपने बिन पायेई—स्वप्न में भी बिना पाये ही। दुखहाई—दुःख की मारी। जगे ··सोवति हैं—जागने पर भी आँखें कुछ देखतीं नहीं॥१७०॥

पहिलें पहिचानि जु मानि लई,
अब तो सु भई दुख मूल महा।
इत कै हित बैर लियो उत है वित-
ज्यौं हरि ब्यौहरि लोभ लहा ॥
'घन आनन्द' मीत सुनौं अरु ऊतर,
दूर तें देहु, न देहु हहा।
तुम्हें पाय अजू हम खोयो सबै,
हमैं खोय कहौ तुम पायो कहा ॥१७१॥

सुधि होती सुजान! सनेह की जो,
तो कहा सुधि यों बिसरावते जू।
छिन जाते न बाहर जौ छल छूटि,
कहूँ हिय भीतर आवते जू ॥
'घन आनन्द' जान न दोस तुम्हें,
गुन भावते जो गुन गावते जू।
कहिए सु कहा 'अब मौन भली,
नहीं खोवते जो हमैं पावते जू ॥१७२॥

इतकै··लोभ लहा=आपने लोभी ब्यवहारी (व्यापारी) की भांति लाभ के लोभ से इधर तो प्रेम किया और उधर जीवरूपी धन हरण किया। उत्तर··देहु—यदि आप हमारे पास नहीं आते हैं, तो दूर से ही उत्तर दीजिए। न देहु हहा—ठठा कर हँसो मत ॥१७१॥

सुधि - स्मरण। छल···आवतेजू—यदि छल छोड़कर निष्कपट हृदय से कहीं मेरे हृदय में आए होते। गुन···गावते जू—यदि आप भी कहीं प्रेम के गुण गाते होते। खोवते—नष्ट कर देते; मिट्टी में मिलाते ॥१७२॥

किहि ठान ठनी हौ सुजान मनौ,
गति जानि सकै सु अजान कर्‌यो।
इहि सोच समाय उदेगन माय,
बिछोह तरङ्गनि पूरि भर्‌यो।
सु सुनौ मनमोहन ताकी दसा,
सुधि - सांचनि - आँचनि बीच रर्‌यो।
तुम तौ निहकाम सकाम हमैं,
'घन आनन्द' काम सों काम पर्‌यो ॥१७३॥

सो अबला तकि जान! तुम्हैं बिन,
योँ बल कै बलकै जु बलाहक।
त्यों दुख देखि हँसै चपला,
अरु पौनहूं दूनौ बिदेह तें दाहक ॥
चन्दमुखी सुनि मन्द महा तम,
राहु भयो यह आनि अनाहक।
प्रान धरो हर हैं 'घन आनन्द'
लेहु न तौ अब लेहिंगे गाहक ॥१७४॥

किहि…ठनी हौ - कौन सी बात तुमने निश्चय कर ली है। मनौ—मन ही। माय—अमाय, से भरकर। पूरि भर्‌यो - मन पूर्ण रूप से भर गया। सुधि…आँचनि स्मृति की सच्ची आग में। रर्‌यौ—रटता रहता है, चिल्लाता है। निहकाम - निष्काम ॥१७३॥

बलकै—बलकता है, गरजता है, जोश में आता है। बलाहक—बादल। बिदेह—कामदेव। चंद्रमुखी सुनि—मुझे चन्द्रमुखी सुनकर। महा तम—घोर अन्धकार अनाहक—व्यर्थ में ॥१७४॥

मो बिन जो तुम्हैं और रुची,
तो रुचै न तुम्हैं बिन मोहि जियौ जू।
आंखिन में ढरिआई रहै,
सुदहै दुखिया गहि आस हियो जू॥
सूल भयो गुन जो तिहि अङ्ग की,
दीप सों बारि बियोग दियो जू।
हाय सुजान सनेही कहाय क्यों,
मोह जनाय कै द्रोह कियो जू॥१७५॥

हाय सनेही सनेह सों रूखे,
रुखाई सों है चिकने अति सो हौ।
आपुनपो अरु आपहु तें करि,
हाते हतौ 'घन आनन्द' को हौ॥
कौन घरी बिछुरे हौ सुजान जू,
एक घरी मन तें न बिछोहौ।
मोह की बात तिहारी असूझ पै,
मो हिय को तो अमोहियौ मोहौ॥१७६॥

जियो—(अपना) जी भी। ढरिआई—ढलकनि, आँसुओं का निरंतर ढलना। सूल भयौ···दियो जू—आपने अपने अंग की दीप्ति से अपने गुणों को (बत्ती) वियोग द्वारा जला दिया है, वही मेरे लिए अब शूल हो गया है, अर्थात् आपके वियोग में आपके गुण याद आते हैं और दुख देते हैं ॥१७५॥ सनेह···रूखे—स्नेहहीन। रुखाई सौं चिकने—शुष्कता से पूर्ण। आपुन पौ=मुझे अपने से। आपहु—आप अपने से। हाते—अलग। असूझ—समझ में नहीं आती। अमोहियौ—अमोही हो कर भी ॥१७६॥

जा हित मात को नाम जसोदा,
सुबंस को चन्दकला कुलधारी।
सोभा समूह भई 'घनआनन्द'
मूरति रङ्ग - अनङ्ग - जिवारी ॥
जान महा सहजै रिझवार,
उदार विलासँ में रासविहारी।
मेरो मनोरथ हू वहिये अरु,
हैं मो मनोरथ पूरनकारी ॥१७७॥

अङ्क भरौं चकि चौंकि परौं,
कबहूँक लरौं छिनही में मनाऊं।
देखि रहौं अनदेखे दहौं,
सुख सोच सहौं जु लहौं सुनि पाऊं ॥
जान तिहारी सौं मेरी दसा यह,
को समुझै अरु काहि सुनाऊं।
यों 'घनआनन्द' रैन दिना न,
बितीतत जानिए कैसे बिताऊं ॥१७८॥

जा हित –जिसके कारण। जसोदा—यशोदा, यश देनेवाली। चंदकला कुलधारी—चंद्र वंशी। जिवारी—जिलाने वाली, उत्पन्न करनेवाली। जान—सुजान, श्रीकृष्ण। वहिये—वही श्रीकृष्ण मेरे मनोरथ हैं। हैं…पूरनकारी–मेरे मनोरथ को पूर्ण करनेवाले भी ॥१७७॥

वियोग में उन्माद। अंक भरौं-गोद में भरती हूँ। चकि—चकित होकर। सुख…पाऊं — यदि यह सुन पाऊं कि आप मिल जायंगे तो सारा सोच सुखपूर्वक सह लूं। न बितीतत-व्यतीत नहीं होते ॥१७८॥

गई सुधि अङ्ग, भई मति पंगु,
नई कछु बात जतावति हौ न।
दुराव किए कहा होत सखी,
रङ्ग और भयो ढङ्ग उत्तर कौ न॥
हिए धरको तन स्वेद जग्यो,
अरु ऐसी जँभानि की बानि हु तौ न।
बढ़ाइहै बेदनि साँच कहौ,
'घनआनन्द' जान चढ़े चित जौ न॥१७९॥

मुख नेह रुखाई दिखाई मरौं,
इत की तो चिन्हारि रही न उनै।
रचि कौन से घाट लियो है हियो,
बिन हेरैं न जीव बिचार गुनै॥
'घनआनन्द' ऐसी दसानि बिरच्यो,
दुखिया जिय सोचनि सीस धुनै।
अब कैसी भई उन जान हई,
दई कूक करौं पै न कोऊ सुनै॥१८०॥

नई···न—क्या तुम किसी नई दशा को नहीं प्रकट करतीं। दुराव—छिपाव। रंग···उत्तर कौन-इस रंग ढँग के बदल जाने का तुम्हारे पास क्या उत्तर है। स्वेद—पसीना। बानि—स्वभाव। बेदनि—दुख। चढ़े चित जौन—कहीं सुजान तो तुम्हारे चित्त पर नहीं चढ़ गए हैं॥१७६॥

मुख···दिखाई—प्रियतम के मुख ने स्नेह का रूखापन दिखाया। उनै—उनको। रचि···हियो—किस घाट पर जा कर रम गये हैं। बिन; हेरैं··गुनै—उनके बिना देखे जीव कुछ विचार ही नहीं सकता। वह विवेकशून्य हो गया है। हई—मार डाला॥१८०॥

जान छबीले कहौ तुमहीं जो न,
दीसौ तो आंखिनि काहि दिखाऊं ।
कौन सुधाई - सनी बतियानि,
विना इन काननि लै कहा प्याऊं ॥
हाय मरयौ मन पार तें प्रीतम !
या दुखियाहि कहां परचाऊं ।
चाहत जीव धरयो 'घनआनन्द'
रावरी सौं कहूँ ठौर न पाऊं ॥१८१॥

निस द्योस उदास उसास धकौं,
न सकौं तजि आस बिसास जकी ।
'घनआनन्द' मीत सुजान बिना,
अँखियान कों सूझत एक टकी ॥
इत की गति कौन कहै को सुनै,
मन ही मन मैं यह पीर पकी ।
भरिए केहि भांति कहा करिए,
अब गैल सन्देसनहू की थकी ॥१८२॥

जो न दीसो—यदि तुम दिखाई न दो। काहि—क्या। सुधाई-सनी—अमृत से सनी हुई। या दुखियाहि—इस दुखिया मन को। परचाऊँ—बहलाऊं। धरयो—रखना, अनुरक्त करना। ठौर—स्थान ॥१८१॥

उसास धकौं—साँस की गर्मी से जलती हूँ। विसास जकी—लौट आने का जो विश्वास दिला गए हैं, उसी को मैं रटती रहती हूँ। सूझत एकटकी—आँखें टकटकी ही लगाये रहती हैं। भरिए—सहन करें। गैल··थकी—समाचार आना भी बंद हो गया ॥१८२॥

प्यारे सुजान के पानि को मंडन,
खंडन वैद अखंड कला को।
ज्यौं सरस्यो जबहीं दरस्यो,
बरस्यो 'घनआनन्द' हेत झला को॥
सूछम सो पै भर्यौ अतुलै-
सुख रङ्ग बिभौ जुग नैन पला को।
प्रीतम लों हिय राखन हाथ,
बिछोह में ज्यावत मोह छला को॥१८३॥
घूमत सीस लगै कब पायनि,
चायनि चित्त मैं चाह घनेरी।
आँखिन प्रान रहे कहि थान,
सुजान सुमूरति माँगत नेरी॥
रोमहि रोम परी 'घनआनन्द',
काम की रोर न जाति निवेरी।
भूलनि जीतति आपुनपौ बलि,
भूलै नहीं सुधि लेहु सबेरी॥१८४॥

पानि को मंडन—हाथ की शोभा बढ़ाने वाला। खंडन ··कला को—वैद्य की कला का भी खंडन करने वाला। सरस्यौ—आनंद से भर गया। हेतु-झला—प्रेम की झड़ी। सूछम···पला को—है तो यह अत्यंत सूक्ष्म, पर इसमें नेत्र रूपी दोनों पलड़ों का अतुल सुख, आनंद और वैभव भरा हुआ है। आँखों की तराज़ू पर इतना आनंद तुल नहीं सकता। हिय राखन हाथ—हृदय पर हाथ रखनेवाला, धैर्य देनेवाला है। छला=छल्ला, अँगूठी॥१८३॥ घूमत—चक्कर खाता हुआ। पायनि-आपके पैरों में। नेरी—निकट। रोर—चहल पहल।

ललचौंही लगौंहों भई तुम सोंहीं,
इतै अँखियां सुख साध भरीं।
उत आप निकाई निधान सुजान,
यह बावरी ह्वै अरराय परीं॥
'घनआनन्द' जीवन प्रान सुनौ,
बिछुरे मिलें गाढ़ - जँजीर - जरीं।
इनकी गति देखन जोग भई,
जु ग देखन मैं तुम्हैं देखि अरीं॥१८५॥

जब तैं तुम आवन आस दई,
तब तें तरफौं कब आयहौ जू।
मन आतुरता मनहीं में लखौ,
मन - भावन! जान सुभाय हौ जू॥
.वेधि के दिन लौं छिन बाढ़ि परे,
यह जानि बियोग बितायहौ जू।
सरसौ 'घनआनन्द' वा रस कों
जु रसा रस सा बरसाय हौ जू॥१८६॥

न जाति निवेरी—निवारण नहीं की जा सकती। भूलनि जीतति आपुनपौ—विस्मृति ने मेरी चेतना पर अधिकार कर लिया है॥१८४॥

लगौं ही—अनुरक्त होनेको उत्सुक सौंही—सामने। सुख-साध—सुख की अभिलाषा। निकाई—सुंदरता। अरराय परी—टूट पड़ीं, विना सोचे समझे आप पर रीझ गईं। न देखने में…अरीं—तुमको न देखनि में देखकर अर्थात तुमको न देखकर अड़गई हैं अर्थात् और कुछ नहीं देखतीं॥१८५॥

तरफौं - तड़फती हूँ। विधि ‥बाढ़ि परे—एक एक क्षण ब्रह्मा के

अभिलाखनि लाखनि भाँति भरीं,
वरुनीन रुमांच ह्वै कांपति हैं।
'घनआनन्द' जानि सुधाधर मूरति,
चाहनि अङ्क मैं चाँपति हैं॥
टक लाय रही पल पाँवड़े कै,
सु चकोर की चोपहि झाँपति हैं।
जब तें तुम आवन औधि वदी,
तव तें अँखियाँ मग मांपति हैं॥१८७॥

मग हेरत दीठि हिराय गई,
जब ते तुम आवन औधि बदी।
वरसौ कितहूँ 'घनआनन्द' प्यारे,
पै वाढ़ति है इत सोच-नदी।
हियरा अति औंटि उदेग की आँचनि,
च्वावत आँसुन मैन-मदी।
कब आयहौ औसर जान सुजान,
वहीर लों बैस तौ जाति लदी॥१८८॥

दिनकी भाँति बढ़ गया है। बरसौ–बरसाओ। रसा—पृथ्वी। सरसौ बरसाय हौजू-जिस रस को बरस कर आप सब पृथ्वी को आनंद देते हैं, उससे मुझे वंचित न कीजिए ॥१८६॥ बरुनीन··कांपति हैं—वरुनी रूपी रोमांच द्वारा अपना कंपन प्रकट करती हैं। चांपति हैं—छिपाए हुए हैं। पल पांवड़े कै--पलकों को पाँवड़े करके। झांपति हैं—ढक देती हैं, लज्जित करती हैं, इनका चाव चकोर से भी अधिक है ॥१८७॥ औधि-अवधि। बदी-निश्चित की। मैन-मदी—कामदेव रूपी मदिरा बनानेवाला। बहीर--सेना का सामान ॥१८८॥

तुम ही गति हौ तुम ही मति हौ,
तुम ही पति हौ अति दीनन की।
नित प्रीति करौ गुनहीनन सों,
यह रीति सुजान प्रवीनन की॥
बरसौ 'घनआनन्द' जीवन कों,
सरसौ सुधि चातक छीनन की।
मृदु तौ चित के पन पै इत के,
निधि हौ हित के रुचि मीनन की॥१८९॥

अति - दीनन की गति, हीनन की पति,
लीननि की रति के मन हौ।
सब ही बिधि जान! करौ सुख दान,
जिवावत प्रान कृपातन हौ॥
'घनआनन्द' चातक - पुंजनि पोखन,
तोषन रङ्क महा - धन हौ।
जन सोच - विमोचन सुन्दर लोचन,
पूरन काम भरे पन हौ॥१९०॥

गति - सहारा, शरण देनेवाले। पति--प्रतिष्ठा। सरसौ…छीननि की - क्षीण, दुर्बल पपीहों की याद करो। सरसौ सुधि - सुधि को सरस करो, सुधि लो॥१८९॥

गति - आश्रय। हीन - जिनका कोई सहायक नहीं। पति - मर्यादा की रक्षा करनेवाले। लीननि… मन हौ - जो तुम्हारे प्रेम में लीन हैं उनसे तुम भी प्रेम करनेवाले हो। उसके लिए तुम रति के भी मन हो। रति - अनुरक्ति, प्रेम। पोखन - पोषण करनेवाले। तोषन रंक--

चेटक रूप रसीले सुजान !
दई बहुतैं दिन नैक दिखाई ।
कौंध में चौंध भरे चख हाय,
कहा कहौं हेरनि ऐसें हिराई ॥
बातैं बिलाय गई रसना पैं,
हियो उमगौ कहि एकौ न आई ।
साँच कि सम्भ्रम हौ 'घनआनन्द',
सोचनि ही मति जाति समाई ॥१९१॥

सुख - चाहन को चित चाहत है,
चख - चाहनि ठौरहि पावति ना ।
अभिलाखनि लाखनि भाँति भरे-
हियरा मधि साँस सुहावति ना ॥
'घनआनन्द' जान तुम्हैं बिन यों,
गति पंगु भई, मति धावति ना ।
सुधि दैन कही सुधि न चही, लै
सुधि पाए बिना सुधि आवति ना ॥१९२॥

दरिद्रों को संतुष्ट करने के लिए। जन - भक्त । सोच-बिमोचन - शोच नष्ट करने वाले ॥१९०॥

चेटक - जादू । कौंध - चमक । हेरनि···हिराई - देखने की शक्ति नष्ट हो गई । बिलाय गई - खो गई, कुछ कहते नहीं बना । मति-- बुद्धि ॥१९१॥ चख···ना - आँख कुछ और देखना नहीं चाहतीं । साँस···ना - हृदय में सांस अच्छी नहीं लगती, जीवित रहने की इच्छा नहीं । गति पंगु भई - चल फिर नहीं सकते । मति···ना - बुद्धि काम नहीं देती ॥१९२॥

कहा कहिए सजनी रजनी-
गति, चन्द कढ़ै कि जियै गहि काढ़ै।
अमीनिधि पै विष-सार सुवै,
हिम जोति जगाय कै अंगनि डाढ़ै॥
सु या पति संग न जानति है,
'घनआनन्द' जान-बिछोह की गाढ़ै।
वियोग मैं बैरिनि बाढ़त जैसी,
कछू न घटै जु सँजोगहू बाढ़ै॥१९३॥

जान सुखारे रहौ, रहि आए हौ,
होत रही है सदा चित-चीती।
हैं हमही धुर की दुखहाई,
बिरंचि बिचारि कै जाति रची तौ॥
प्राण पपीहन के घन हौ,
मन दै 'घनआनन्द' कीजै अनीती।
जानौ कहा अनुमानौ हियैं,
हित की गति कौ, सुख सो नित बीती॥१९४॥

वियोग में चाँदनी रात का कष्टदायक होने का वर्णन—
जियै—हृदय को। काढ़ै—निकाले लेता है। अमी—अमृत। हिम…डाढ़ै—शीतल चाँदनी से भी अंग अंग को जलाती है। या—यह रात। पति संग—अपने पति चंद्रमा (रजनी पति) के साथ होने के कारण॥१९३॥ धुरकी दुखहाई=अत्यन्त दुःख की मारी। जाति रची तो-स्त्री की जाति बनाई। मन दै—मनमाना। जानौ…बीती—आप प्रेम की दशा को क्या जानें, आप उसका अनुमान भी क्या करें, आपकी तो हमेशा चैन से कटी है॥१९४॥

जित चाहत है तित जाय मिलै,
चित रावरो कोबिद केलि - कला।
जिनकें तुम भोरि बिसास करो,
सुन साँस भरैं वपुरी अबला ॥
'घनआनन्द' जान रहौ उनए से,
नए बरसौ नित नेह - झला।
नन्दनायक लायक मायक हौ,
गति पाय परै न तिहारी लला ॥१९५॥

नीके नए अति जी के लगौहैं,
सुधारे हैं तून, प्रसून के सायक।
चौगुनी चोपनि तैसोई चाप—
चहौरि दै हाथ सज्यो भट नायक ॥
पौन - तुरंग चढ़्यो बनि यौं,
बनितानि अहेरे कढ्यो दुख दायक।
हौ 'घनआनन्द' जान कहाँ,
रितुराज भयौ रतिराज सहायक ॥१९६॥

कोविद…कला—केलि की कला में प्रवीण। विसास—विश्वास। वपुरी—वेचारी। उनए—झुके। नए=नवीन, (पुराने प्रेम को छोड़-कर)। नेह-झला—प्रेम की झड़ी। मायक—मायावी। गति…परै—तुम्हारी चाल समझ में नहीं आती ॥१९५॥

जी के लगौंहे—हृदय पर चोट करने वाले। तून=तरकस। प्रसून—फूल। सायक=वाण। चोपनि—उमंग। चहौरि दै—दृढ़ता से संभाल कर पकड़ कर। पौन-तुरंग—पवन रूपी घोड़े पर। रितुराज—बसंत। रतिराज=कामदेव ॥१९६॥

नित लाज भरे, हित ढार - ढरे,
निखरे सुखरे सुखदायक हो।
'घनआनन्द' भूमि कटाच्छिन सों,
रसपान - त्रिषाहि सहायक हो॥
जिय बेधन को अनियारे महा,
पै सुधाहि सुधारन सायक हो।
घिरि घूंघट पैठत जान हिए,
निपटै निबटे नटनायक हो॥१९७॥

सब ठौर मिले पर दूरि रहौ,
भरि पूरि रहै जिहि रङ्ग झिलौ।
इहि लायक हो बहुनायक हो,
सुखदायक हो पुनि पाय खिलौ॥
'घनआनन्द' मीत सुजान सुनौ,
कहूँ ऊपिल सें कहूँ हेत हिलौ।
हम और कछू नहिं चाहति हैं,
छिनको छिन मानस - रूप मिलौ॥१९८॥

नेत्रों का वर्णन। हित ढार ढरे—प्रेम से पूर्ण। निखरे—स्वच्छन्द। सु खरे—अत्यन्त खरे। रसपान...ही—रस-पान की अभिलाषा को बढ़ानेवाले हो। अनियारे—नुकीले। सुधहि सु धारन—सुधा (अमृत) को भली भांति धारण करनेवाले। घिरि घूंघट—घूंघट से घिरे रहने पर भी। निपटै निबटे—अत्यंत कुशल। नटनायक—कलाबाज, खिलाड़ी॥१९७॥ भरि ... झिलौ - जिस रंग में प्रवेश कर घुल मिल जाते हो, वहीं सर्वांग पूर्ण हो जाता हैं। पुनि ... खिलौ—फिर तुम अपने भक्त को पा कर प्रसन्न हो जाते हो। ऊपिल—पराये। हेत प्रेम।

हिय की गति जाननि जोग सुजान,
हौ कौन सी बात जो आहि दुरी।
टपक्योई परै हिय अंकुर - ओसलौं,
ऐसी कछू रस रीति धुरी॥
बिछुरे कित, साँति मिलेहूँ न होति,
छिदी छतियाँ अकुलानि-छुरी।
तुम ही तिहि साखिसुनौ 'घनआनन्द',
प्यार निगोड़े की पीर बुरी॥१९९॥

जिन हीं बरुनीन सों बेध्यो हियो,
तिनही दृग - हाथ सिवावत हौ।
बिषबोए कटाछन हौ हँसि दै,
जु सुजान सुधाही पिवावत हौ॥
अनबोले रहौ जु अनोखे अजौं,
रस में अब रोस दिवावत हौ।
'घनआनन्द' चूकौ न दाव कहूँ,
फिरि मारन चाव जिवावत हौ॥२००॥

हिलौ—दिल मिल जाते हो। मानसरूप—साकार (मनुष्य) रूप में।१९८।

दुरी—छिपी। टपक्योई···लौं—हृदय इतना द्रवित हो गया है कि अंकुर पर की ओस की भांति टपका पड़ता है। बिछुर···होति=शांति आप से बिछुड़ने पर कहा है। अकुलानि-छुरी—व्याकुलता रूपी छुरी। साखि—साक्षी॥१९९॥

जिनही बरुनीन सों—जिन नेत्रों की बरोनियों से। दृग-हाथ—उन्हीं नेत्रों के हाथ से। रोस—क्रोध। मारन···जियावत हौं—मारने के शौक से मुझे जीवित रखते हो॥२००॥

ढिंग बैठे हू पैठि रहै उर में,
धरकै खरकै दुख दोहतु है।
दृग आगे तें बैरी टरै न कहूँ,
जगि जोहन अन्तर जोहतु है॥
'घनआनन्द' मीत सुजान मिले,
बसि बीच तऊ मन मोहतु है।
यह कैसो संजोग न बूझि परै,
जु बियोग न क्योंहू बिछोहतु है॥२०१॥

हित-भूलनि पै कित भूलि रहे,
अहो भूलहू नोकें न जानत हो।
उहि भूलनि सङ्ग लगी सुधि है,
जु सुजान सदा उर आनत हौ॥
'घनआनन्द' सोऊ न भूलत क्यों,
जो पै भूलि ही कों ठिक ठानत हौ।
तब भूलि कै लैहौ कछू सुधि तौ,
चित दै इतनी किन मानत हौ॥२०२॥

ढिग · उरमें—प्रियतम के पास बैठे रहने पर भी यह वियोग हृदय में घुस जाता है। दुख दोहतु है - दुख उत्पन्न करता है। जग··· जोहतु है—देखते समय प्रकट हो कर अंतर स्वयं देखनें लगता है। बीच—अन्तर, पर्दा। बियोग · बिछोहतु है—वियोग कभी अलग नहीं होता॥२०१॥

हित-भूलनि—प्रेम की भूलनि। भूलि रहे—मस्त हो। सोऊ—वह भूलने की सुधि। ठिक—प्रण। तब · सुधि—उस समय भूल में भी कभी मेरी याद आ जायगी॥२०२॥

मो दृग-तारनि जो पैं तिहारौ,
निहारिबोई है महा - सुख - लाहौ।
तो पै कहा हो हठीले सुजान हिये,
चाहैं परे तुम नैकौ न चाहौ॥
रावरी बानि अनोखियै जानि कैं,
प्रान रचे तेहि रङ्ग सराहौ।
कै बिपरीत मिलौ 'घनआनन्द'
या बिधि आपनी रीति निबाहौ॥२०३॥

घूंटै घटा चहुँघां घिरि कै,
गहि काढ़े करेजो कलापिनि कूकैं।
सीरो समीर सरीर दहै,
चमकै चपला चख लै करि ऊकैं॥
एहो सुजान तुम्हें लगे प्रान,
सुपावस यों तजि ध्यावस सूकैं।
है 'घनआनन्द' जीवन - मूल,
धरौ चित मैं कित चातिक चूकैं॥२०४॥

तिहारौ निहारिबोई—तुम्हारा देखना ही। लाहौ—लाभ। कै बिपरीति - अपने स्वभाव के प्रतिकूल। या बिधि···निबाहौ—तुम सदा उलटे ही चलते हो। इसलिए तुम अपने अभ्यास के प्रतिकूल कार्य करके अपने प्रणका पालन करो॥२०३॥

घूंटै—दम घोटती है। कलापिनि—मोरों की। चाख···ऊकैं—आँखों में आग सी लगाकर। ध्यावस—धैर्य। चूकैं - भूल॥२०४॥

लहौं जान पिया लखि लाखन प्रान पै,
बारिबे की अभिलाषा मरौं।
सु कहौं केहि भाँति अनोखियै पीर,
अधीर ह्वै नैनन नीर भरौं॥
'घनआनन्द' कीजै बिचार कहा,
महा रङ्क लौं सोच सकोच ररौं।
चित-चौंपन चाह के चौचन्द मैं,
हहराइ हिराय कै हारि परौं॥२०५॥

रीझि तिहारी न बूझि परै,
अहो बूझति कहो रीझत काहैं।
बूझि कै रीझत है जु सुजान,
किधौं बिन बूझि की रीझ सराहैं॥
रीझन बूझौ तऊ मन रीझत,
बूझि न रीझै हू और निबाहैं।
सोचनि जूझत मूझतु ज्यौं,
'घनआनन्द' रीझ औ बूझहिं चाहैं॥२०६॥

लहौं⋯प्रान—सुजान प्रीतम को देख कर मुझे लाखों प्राण मिल जाते हैं। बारिबे की—प्राण निछावर करने की। ररौं—रटती हूँ। चौंपनि - उत्कंठा। हहराइ—घबड़ा कर। हिराय कै - खोकर॥२०५॥

बूझति हैं—पूछती हैं। बूझिकैं—समझ कर। और—अंत तक। मूझतु— मोह को प्राप्त होता है॥२०६॥

रावरे रूप की रीति नई,
यह जोहन राखतु लै गहि गोहन।
जान न देत कहूँ कबहूँ तिन,
लेत है है। करि रोठि को दोहन ? ॥
सूझ सबै जु टरै 'घनआनन्द'
बूझि परै न महा मति मोहन।
देखै कहा, जो न दौसौं इते पर,
हा हा सुजान तिहारियै सोहन ॥२०७॥

रीझि बिकाई निकाइ पै रीझि,
थकी गति हेरत हेरन की गति।
जोबन-घूमरे नैन लखें,
मतवारी भई मति वारि कै मो मति ॥
बानी बिलानी सुझालनि मैं,
अनचाहनी चाह ज़िवावति है हति।
जान के जीकी न जानि परै,
'घनआनन्द' याहू तै होति कहा अति ॥२०८॥

जोहन⋯गोहन—देखने (दृष्टि) को अपने साथ कर लेता है। छैकरि—चुमकार कर। दीठिकौ दोहन—दृष्टि को दुह लेते हो। दृष्टि और कुछ देखने के काम की नहीं रहती। सोंहन-सौगंध ॥२०७॥

रीझि⋯रीझि=सुन्दरता पर रीझ कर रीझ बिक गई। थकी गति⋯गति=देखने का ढङ्ग देखकर गति थक गई। बानी=वाणी। बिलानी—नष्ट हो गई। अनचाहनी—अनिच्छित। जिवावति है हति—मारकर जिलाती है ॥२०८॥

ए मन मेरे कहा करी तैं,
तजि दीन चल्यो जु प्रवीन है तो सौ।
ल्यायो न काहू वै आँखि तरैं हौं,
कहूँ कबहूँ करि तेरौ भरोसौ॥
मीत सुजान मिल्यो सु भली,
अब बावरे मोसो भरयो कित रोसौ।
सोचत है। अपने जिय मैं,
सपने न लहौं 'घनआनन्द' दोसौं॥२०९॥

दुख-धूम की धूँधरि मैं 'घनआनन्द',
जौ यह जीव घिरयो घुटिहै।
मनभावन मीत सुजान सों नातौ,
लग्यो तनकौ न तऊ टुटिहै॥
मन जीवन-प्रान को ध्यान रहैं,
इक सोच बच्यो न सोऊ लुटि है।
घुरि आस की पास उसास गरैं,
जु परी सुमरैं हुं कहा छुटिहै ? ॥२१०॥

काहूवै - किसी को भी। रोसौ—क्रोध। सोचत है···दोसौ—घनानंद कहते हैं कि हे मन! क्या तुम अपने हृदय में यह सोचते हो कि मैं स्वप्न में भी दोष नहीं करता॥२०६॥

दुख-धूम की धूँधरि=दुख रूपी धुएँ की धुंध में। घुरि···गरैं—साँसों के गले में आशा का फंदा कस कर लगा हुआ है॥२१०॥

आपुन अङ्गनि-अङ्ग को रङ्ग,
भरयो रिस आनि कैं अङ्ग पजारतु।
रावरे चैन को ऐन हियो है,
सु रैन दिना यह मैन उजारतु॥
और अनीति कहाँ लौं कहौं,
'घनआनन्द' जो कछू आपदा पारतु।
कैसे सुहाति सुजान तुम्हैं,
हितु मान दई कोऊ ऐसें बिसारतु॥२११॥

पीर की भीर अधीर भई,
अँखियाँ दुखिया उमगीं झरना लौं।
रोकि रही उर-मैं डवही, इन,
टेक यही जु गही सु दही हौं॥
भीजि बरै घिय धार परैं हिय,
आँसुनि यों पजरै बिरहा दौं।
'आनन्द के घन' मीत सुजान है,
प्रीति मैं कीनी अनीति कहा गौं॥२१२॥

आपुन···पजारतु—मेरे अंग को आपके अंग प्रत्यंग के रंग से भरा हुआ जानकर यह अनंग (कामदेव) जलाता है। ऐन—घर। मैन—कामदेव। सुहाति—अच्छा लगता है॥२११॥

उर-मैंड बही=हृदय की मेंड वह गई हृदय द्रवित हो गया। अधीरता से हृदय भर गया। दौं—दावाग्नि। कहा गौं—किस कारण वश॥२१२॥

जोरि कै कोरिक प्रानन भावते,
सङ्ग लिए अँखियान मैं आवत।
भीजे कटाच्छनि सों 'घनआनन्द',
छाइ महा - रस को बरसावत॥
ओट भए फिर या जिय की गति,
जानत जीवनि ह्वै जु जनावत।
मीत सुजान अनूठियै रीति,
जिवाइ कै मारत मारि जिवावत॥२१३॥

लाखनि भाँति भरे अभिलाखनि,
कै पल-पाँवड़े पन्थ निहारैं।
लाड़िली आवनि लालसा लागि,
न लागत हैं मन मैं पन धारैं॥
यों रस भीजे रहैं 'घनआनन्द',
रीझे सुजान सुरूप तिहारैं।
चायनि बावरे नैन कबै,
अँसुवानि सों रावरे पाँय पखारैं॥२१४॥

जोरि कै···आवत · अनेकों मनुष्यों के प्राणों को अपनी आँखों में इकटठा करके आते हैं॥२१३॥

कै···निहारैं—पलक रूपी पाँवड़ों को बिछाकर मार्ग दिखा रहे हैं। न लागत हैं—नींद नहीं आती। चायनि—चाव के साथ॥२१४॥

सोवत भाग जगे सजनी,
दिन कोटिक या रजनी पर वारे।
नेह - निधान सुजान सजीवन,
औचक ही उर बीच पधारे॥
सौतिन तैं पिय पाइ इकौसैं,
भरे भुज सोच सकोच निवारे।
बैरिनि डीठि जरौ 'घनआनन्द',
वों जिय लै पल-पाट उघारे॥२१५॥

जा मुख हाँसी लसी 'घनआनन्द'
कैसें सुहाति बसी तहाँ ना सी।
जौ हिय तें हतियै न हितू,
हँसि बोलन की कत कीजत हाँसी॥
पोषि रसै जिय सोखत क्यों,
गुन बाँधिहूँ डारत दोस की फाँसी।
हा हा सुजान अचम्भो अयान,
ज्यों भेद कै गाँसहि बेधत गाँसी॥२१६॥

स्वप्न में प्रिय दर्शन।

भाग जगे=भाग्य उदय हो गए। इकौसैं—एकान्त में। निवारें—अलग करके। पल-पाट—पलक रूपी किवाड़॥२१५॥

ना सी—मनै करना। जौ·· हितू—यदि हृदय से अपने प्रेमी को मारना न चाहते हो। भेद कै गाँसहि=बंधन खोलकर। बेधत गाँसी—शूल चुभोते हो। गाँसी—नुकीले हथियार की नोक॥२१६॥

आड़ न मानति चाड़ भरी,
उघरीही रहै अति लाग लपेटी।
ढीठि भई मिलि इठ सुजान,
न दैहि क्यों पीठ जु डीठि सहेटी॥
मेरो ह्वै मोहि कुचैन करै,
'घनआनन्द' रोगिनि लौं रहै लेटी।
ओछी बड़ी इतराति लगी मुँह,
नेको अघाति न आँखि निपेटी॥२१७॥

फैलि रही धर-अम्बर पूरि,
मरीचिनि बीचिनि सङ्ग हिलोरति।
भौंर-भरी उफनात खरी,
सु उपाव की नाव तरेरनि तोरति॥
क्यों बचियै भजिहूं 'घनआनन्द'
बैठि रहें घर पैठि ढँढोरति।
जौन्ह प्रलै के पयोनिधि लौं बढ़ि,
बैरिनि आज बियोगिनि बोरति॥२१८॥

आड़ न मानति=आड़ में रहना सहन नहीं कर सकती। चाड़ उत्साह। लाग—प्रेम। ईठ इष्ट। डीठि-सहेटी=जो आँख प्रिय की आँख से एकान्त में मिली। ओछी बड़ी=अत्यन्त छोटे स्वभाव वाली। अघाति -तृप्त होती। निपेटी—बहुत खाने वाली॥२१७॥

वियोगावस्था में चाँदनी की समता प्रलय के समुद्र से की गई है—धर=पृथ्वी। अंबर—आकाश। मरीचिनि-बीचिन - किरण रूपी लहरों। भौंर—भँवर। तरेरनि—झटकों से॥२१८॥

रूपनिधान सुजान सखा,
जब तें इन नैननि नैकु निहारे।
डीठि थकी अनुराग-छकी मति,
लाज के साज समाज बिसारे॥
एक अचम्भो भयो 'घनआनन्द',
हैं नितही पल-पाट उघारे।
टारै टरैं नहीं तारे कहूँ,
सुलगे मनमोहन मोह के तारे॥२१९॥

मेरोई जीव जो मारत मोहिं,
तौ प्यारे कहा तुम सों कहनो है।
आँखिन हूं पहिचान तजी कछु,
ऐसो ही भागनि को लहनो है॥
आस तिहारियै हौं 'घनआनँद'
कैसे उदास भए रहनो है।
जान ह्वै होत इतै पै अजान जौं,
तौ बिन पावक ही दहनौ है॥२२०॥

पल-पाट—पलक रूपी किवाड़। तारे—आंखों की पुतली। तारे—ताले। आश्चर्य यह है कि किवाड़ खुले रहने पर भी ताले बंद है॥२१९॥

भागनि··है—भाग्य का लाभ है, भाग्य में बदा है। पावक—अग्नि। दहनी—जलना॥२२०॥

सजनो ! रजनी - दिन देखें बिना,
दुख - पागि उद्वेग की आग दहौं।
अँसुवा हिय पै विय धार परै,
उठि स्वाँस झरै सुठि आस गहौं॥
घनआनँद नीर - समीर बिना,
बुझिबे को न और उपाय लहौं।
उर आवत यों छबि छाँह ज्यों हौ,
ब्रज छैल को गैल सदाई रहौं॥२२१॥

गोद भरै, वितु धाइ कै जाइ,
धरौ गहि मोद सों माइ के आगै।
पेट परे का लखै फल ज्यों,
उपजेहौ सपूत सु भागनि जागै॥
बाँटिहै बोलि बधाई कमाई की,
जाति मैं जातें महा पति पागै।
बास दिएं को यहै फल है,
'घनआनँद' जो छिन दोस न लागै॥२२२॥

रजनी-दिन—रात दिन। झरै—जलती है। गैल··रहौं—साथ रहौं॥२२१॥

वितु—धन। कमाई की—तुम्हारी इस लूट की कमाई की। पति—प्रतिष्ठा, सम्मान। बास दिएं को—हमको ब्रज में बसाने का॥२२२॥

नंदलला रससागर सों,
ललिता ! रिस की सलिता न बढ़ैये।
नागरि आगरि हौ बहु भाँति,
तुम्हैं अब कौन सी बात पढ़ैये ॥
चोखनि ताखनि हों उपजै,
'घनआनँद' क्यों गुन दोष कढ़ैये।
नेकु टरै सुधरै सब काज,
अकाज इतौ अपलोग चढ़ैये ॥२२३॥

नैन के सैन में कोटिक मैन,
लजैं रु भजैंतजि कै सर - पाँचनि।
आनँदमै मुसक्यानि लखैं,
पघिल्योई परै चित चाह की आँचनि ॥
ता पिय के हिय को हँसि हेरि,
लई जु ठई सु नई गति नाचनि।
नूपुर बीन सों लीन कै प्यारी,
प्रबीन अधीन किए सुर - साँचनि ॥२२४॥

सलिता—नदी। नागरि आगरि-स्त्री अत्यंत चतुर है। टरै-अपनी हठ छोड़ने पर। अकाज—व्यर्थ में ॥२२३॥

सैन—संकेत। सर-पाँचनि—अपने पाँच बाणों को। आनंदमै—आनंदमय। चाह=प्रेम। नई नाचनि- नाचने की नई गति। लीन कै—कर लिए ॥२२४॥

स्वाध्याय ग्रन्थमाला

१-योगासन और अक्षय युवावस्था

योगासन सम्बन्धी प्रामाणिक पुस्तक। इन प्राचीन व्यायामों को कर के प्राचीन भारतवासी किस प्रकार अक्षय युवावस्था का भोग करते थे इसमें उसका अच्छा वर्णन है। लेखक हैं स्वामी शिवानन्द सरस्वती। मूल्य १।)

२-प्राणायाम और अनन्त शक्ति

प्राणायाम ही महाबल की कुंजी है। प्राणायाम द्वारा प्राचीनकाल में लोग कैसे अकथनीय बल प्राप्त करते थे उसका इसमें वर्णन है। सचित्र पुस्तक है। लेखक—स्वामी शिवानन्द सरस्वती। मूल्य १।)

३-जपयोग और देवदर्शन

"जपात् सिद्धिर्न संशय" इस वाक्य को वैज्ञानिक रूप से इस पुस्तक में सिद्ध किया गया है। जप द्वारा मनुष्य क्या नहीं कर सकता इसका हाल जानना हो तो इस पुस्तक को अवश्य पढ़िये। लेखक—स्वामी शिवानन्द सरस्वती। मूल्य १।)

४-सन्ध्यायोग

सन्ध्या सम्बन्धी पूर्ण साहित्य का संग्रह, वेदों, शास्त्रों, योग तथा वेदान्तादि दर्शनों का निचोड़। गायत्री कैसे कामधेनु है तथा भक्तों के चमत्कारिक अनुभव पढ़ने योग्य विषय हैं। लेखक—प्रतापनारायण चतुर्वेदी। मूल्य १।)

पता—भारतवासी प्रेस, दारागंज—प्रयाग।